R.N.I. No. 2321/57

सितम्बर + अक्टूबर 2015

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

अंक 8-9

तपोभूमि

मासिक

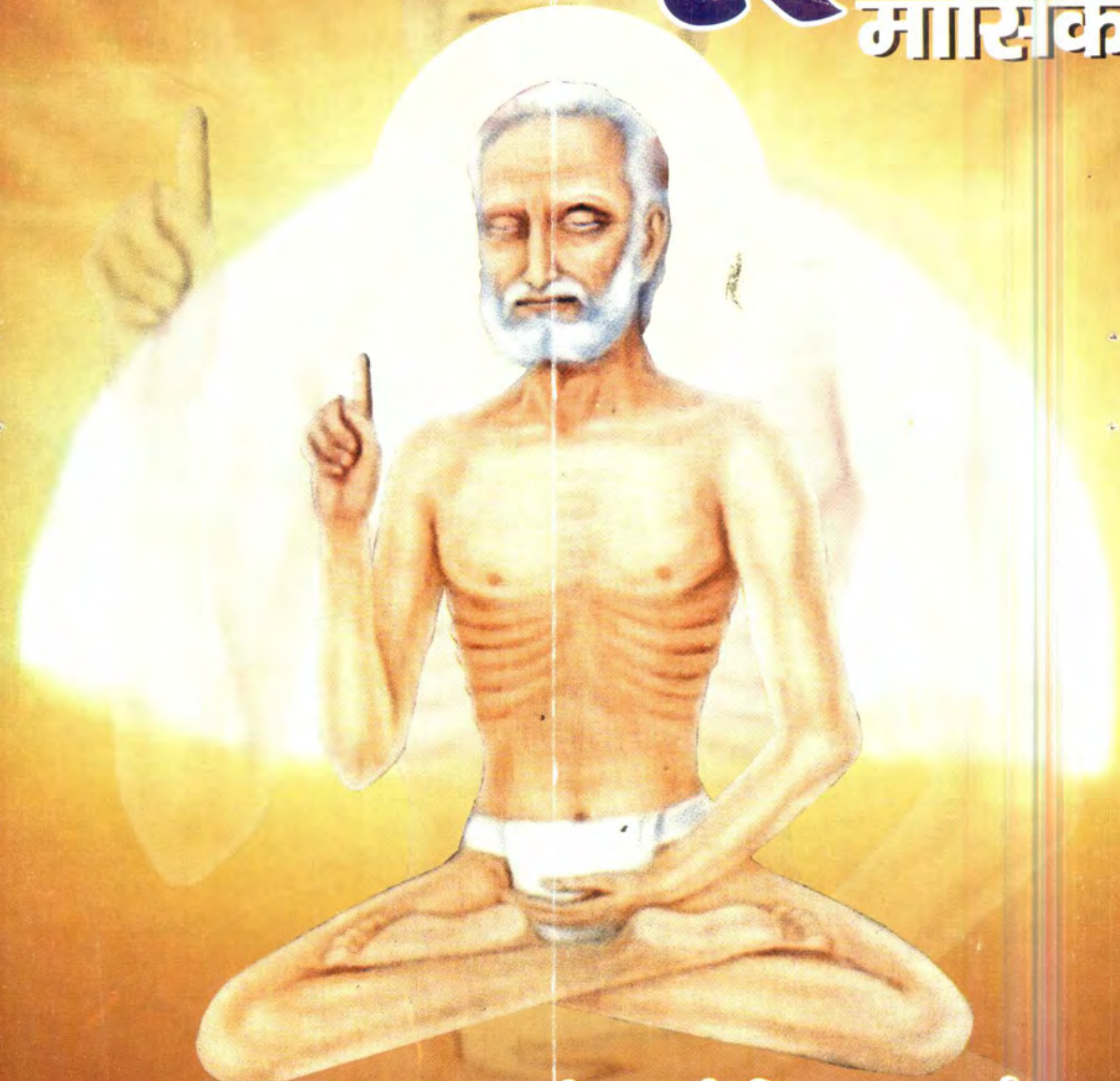

प्रज्ञाचक्षु गुरूवर दण्डी स्वामी विरजानन्द जी

(1779 - 1868)

शंकर–कीर्त्तन

रचयिता– पं0 नाथूराम शंकर शर्मा

हे शंकर कूटस्थ अकर्त्ता, तू अजरामर–अत्ता है।
तेरी परम–शुद्ध–सत्ता की, सीमा–रहित–महत्ता है॥
जड़ से और जीव से न्यारा, जिसने तुझको जाना है।
उसे योगीश–महाभागी ने, पकड़ा ठीक ठिकाना है॥ 1॥

हे अद्वैत, अनादि, अजन्मा, तू हम सबका स्वामी है।
सर्वाधार, विशुद्ध, विधाता, अविचल, अन्तर्यामी है॥
भक्ति–भावना की ध्रुवता से, जो तुझको अपनाता है।
वह विद्वान्–विवेकी–योगी, मनमाना सुख पाता है॥ 2॥

हे आदित्य–देव–अविनाशी, तू करतार हमारा है।
तेजोराशि, अखण्ड–प्रतापी, सबका पालन हारा है॥
जो धर ध्यान धारणा तेरी, प्रेम–भाव में भरता है।
तू उसके मस्तिष्क–कोष में, ज्ञान उजाला करता है॥ 3॥

हे निर्लेप–निरंजन, प्यारे, तू सब कहीं न पाता है।
सब में पाता है पर सारा, सब में नहीं समाता है॥
जो संसार–रूप–रचना में, ब्रह्म–भावना रखता है।
वह तेरे निर्भेद–भाव का, पूरा स्वाद न चखता है॥ 4॥

हे भूतेश महाबल–धारी, तू सब संकट–हारी है।
तेरी मंगल–मूल–दया का, जीव–यूथ अधिकारी है॥
धर्मधार जो प्राणी तुझसे, पूरी लगन लगाता है।
विद्या, बल देता है उसको, भ्रम का भूत भगाता है॥ 5॥

हे आनन्द महासुख दाता, तू त्रिभुवन का त्राता है।
मुक्तक, माता, पिता हमारा, मित्र, सहायक, भ्राता है॥
जो सब छोड़ एक तेरा ही, नाम निरन्तर लेता है।
तू उस प्रेमाधार–पुत्र को, मन्त्र–बोध–बल देता है॥ 6॥

हे बुध, जातवेद, विज्ञानी, तू वैदिक–बल दाता है।
कर्मोपासन–ज्ञान इन्हीं से, जीवन जीव बिताता है॥
जो समीपता पाकर तेरी, जो कुछ जी में भरता है।
अर्थ समझ लेता है जैसा, वह वैसा ही करता है॥ 7॥

–शेष पृष्ठ संख्या 59 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–61 संवत्सर 2072 सितम्बर+अक्टूबर 2015 अंक 8 व 9

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

सितम्बर+अक्टूबर 2015

सृष्टि संवत्
1960853116

दयानन्दाब्द: 192

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–10
ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई	–पं0 रामचन्द्र देहलवी	11–14
जीवेम् शरद: शतम्	–लाखनसिंह भदौरिया	15
वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों की....	–उदयनाचार्य	16–19
मन की गुप्त शक्ति	–पं0 राजाराम प्रोफेसर	20–21
साधारण कार्य और कर्तव्य	–ठा0 कल्याणसिंह शेखावत	22–25
जो पढ़ो उसे हजम कर जाओ	–किशोरीलाल गुप्त	26–27
यह भी जानिये	–रामेन्द्रकुमार आर्य	28–31
जीवन संग्राम में विजय	–स्वामी सोमानन्द महाराज	32–34
परिश्रम		35–38
मन और स्वभाव	–दयाचन्द्र गोयलीय	39–41
बोध कथा	–स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती	42–43
पूजा धर्म	–महात्मा हंसराज	44–45
पुराणों को किसने बनाया	–डॉ0 श्रीराम आर्य	46–49
ब्रह्मचर्य	–पण्डित सत्यव्रत	50–53
भोगवाद	– पं0 गोकुलचन्द्र दीक्षित	54–58

❁❁❁

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

शितिपाद् अवि का दान

पंचापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
प्रदातोप जीवति पितृणां लोकेऽक्षितम्।। अथर्व0 3.29.4

शब्दार्थ:–

(पंचापूपम्) पाँच मालपूड़ों सहित, अर्थात् पंचज्ञानेन्द्रियों से सिद्ध ज्ञान सहित, (लोकेन संमितम्) लोक व्यवहार के कौशल से युक्त, (शितिपादं अविम्) श्वेत टाँगवाली भेड़ को, अर्थात् सात्विकता से युक्त कर्मयोग को (प्रदाता) देने वाला गुरु या आचार्य (पितृणां लोके) पितृजनों के लोक में (अक्षितम्) अक्षय यशवाला होकर (उपजीवति) जीवित रहता है।

भावार्थ:–

'अवि' का प्रचलित अर्थ भेड़ है। आओ, हम ऐसी भेड़ का दान करें, जो ऊपर से काले बालोंवाली है और जिसकी एक टाँग या दो, तीन, चारों टाँगें श्वेत हैं। अकेली भेड़ का दान नहीं, उसके साथ शुद्ध घी में तले हुए पाँच बड़े-बड़े मालपूड़े भी दान करने होंगे। इसका फल क्या होगा? प्रदाता पितृजनों के लोक में अक्षय यश के साथ जीवित रहेगा। 'पितृलोक' क्या है? अनुभवी बड़े-बूढ़े लोगों का समाज। वे उसके यश का गान करते रहेंगे। भेड़ से ऊन प्राप्त होगी, ऊन से शीत-त्राण के लिए ऊनी वस्त्र तैयार होंगे। श्वेत टाँगवाली भेड़ की ऊन कोमल तथा मात्रा में अधिक होती है, अत: 'अवि' के साथ 'शितिपाद्' विशेषण जोड़ा गया है। बड़े-बूढ़े लोग किसी का यश गायें, तो वह सच्चा यश माना जाता है, अत: 'पितृणां लोके' कहा गया है। वह यश दो-चार दिन में समाप्त नहीं हो जाता, अत: यश को अक्षय बताया गया है। किन्तु इतनी व्याख्या से पहेली का समाधान नहीं हो जाता, इसके साथ कुछ अन्य रहस्य भी संनिविष्ट है।

'अवि' में 'अव' धातु है, जिसका एक अर्थ धातुपाठ में क्रिया अर्थात् कर्मयोग भी पठित है। 'अवि' है कर्मयोग, 'श्वेत टाँगवाली अवि' से तात्पर्य है सात्त्विकता से युक्त कर्मयोग **यत: श्वेत वर्णसात्विकता** का प्रतीक है। अकेले सात्त्विक कर्मयोग का दान अभीष्ट नहीं है, अत: उसके साथ 'पंचापूपम्' विशेषण संलग्न किया गया है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ मन स्वयं आ जाता है, क्योंकि कोई भी ज्ञानेन्द्रिय मन के बिना कार्य नहीं करती। 'पंचापूप' में ही शास्त्रज्ञान भी आ जाता है, क्योंकि वह भी शास्त्रकारों द्वारा मनसहित ज्ञानेन्द्रियों से अनुभूत होता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण मंत्र का तात्पर्यार्थ यह हुआ कि जो गुरुजन अपने विद्यार्थियों को शास्त्रज्ञान, मन:सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से उपलब्ध होनेवाले अनुभव-ज्ञान तथा व्यावहारिक ज्ञान एवं कर्मयोग की शिक्षा देते हैं, वे पितृजनों के बीच यशस्वी होते हैं। ❁❁❁

गतांक से आगे–

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

द्वादशः सर्गः

लाभस्य कार्यं क्रियते न शासकैः विनाशनं प्रत्युत दृश्यतां कृषेः।
गवां वधादत्युपकारकात्मनां नानाफलोत्पत्तिभृतो निरन्तरम्॥ 28॥

स्वामीजी ने कहा कि शासक लोग लाभ के कार्य तो करते नहीं हैं किन्तु विनाश का काम करते हैं। देखिये–खेती के लिये उपकारी गौ जैसे प्राणियों का वध आप लोग करते हैं। खेती से अनेक प्रकार के धान्य और फलादि उत्पन्न होते हैं, उस का मुख्य साधन गोपालन ही है॥ 28॥

पयस्विनीजीवनतोऽर्थदृष्टितोलक्षात्मनां पालनमंग जायते।
अथैकधेनो र्वधतो नु केवलं पंचात्मनां तुन्दकृशानुशामनम्॥ 29॥

आर्थिक दृष्टि से भी एक गौ के जीवन से एक लाख मनुष्यों का पालन पोषण होता है। और एक गाय के वध से तो केवल पांच ही आदमियों के पेट की आग बुझती है॥ 29॥

हानिस्तु गोमारणतो विनिश्चिता सम्मन्यते सा परमार्थतो मया।
भवान् मदीयं भवनं श्व एतु तद् भूयोऽत्रवार्त्तां तनितास्महे वयम्॥ 30॥

कर्नल ब्रूक ने कहा कि गोवध से हानि तो है ही, उसे मैं स्वीकार करता हूँ। आप कल मेरे बंगले पर आवें। इस सम्बन्ध में हम कल खूब बातचीत करेंगे॥ 30॥

अथोत्तरेद्यु ब्रुकभद्रवाहनं यतेरुपान्तं समुपागमन्मुनिः।
ज्योतिर्विदाऽऽरुह्य समं समं ययौ हर्म्यं सुरम्यं नृपनीतिभून्मतेः॥ 31॥

दूसरे दिन निश्चित समय पर कर्नल ब्रूक की बग्गी स्वामीजी को लेने आई। स्वामीजी ने रूपराम जोशी के साथ बग्गी पर चढ़कर राजनीतिज्ञ कर्नल ब्रूक के बंगले पर गये॥ 31॥

सम्मानपूर्वं यमिनं निजालये स रूपरामेण समं समागतम्।
वेत्रासने तावुपवेश्य मंजुले गोरक्षणे मंजुगिराऽऽलपच्चिरम्॥ 32॥

कर्नल ब्रूक ने स्वामी जी को रूपराम सहित अपने बंगले में आने पर आदर सहित बेंत की सुन्दर कुर्सियों पर बैठाया और गो–रक्षण विषय पर बड़ी देर तक मिठास के साथ बातचीत होती रही॥ 32॥

यथार्थतो हानिकरो गवां वधोनो मेऽधिकारः परमस्य वारणे।
लाटेन संमेल्य सुभाषतां भवान् पत्रं ममादर्श्य तमित्युवाच सन्॥ 33॥

कर्नल ने कहा कि-वास्तव में गोवध हानिजनक है, किन्तु मेरा अधिकार इसे रोकने का नहीं है। आप मेरा यह पत्र दिखाकर गवर्नर जनरल से मिलें और उनसे बातचीत करें॥ 33॥

हन्तायि नरेन्द्र ! नाकरोस्त्वं वेदानां विदुषां वरेण वार्त्ताम्।
इत्थं दलमेकमालिखत्तं गौरो भद्रविराड्सुहृद्वरोऽयम्।। 34।।

फिर इस कर्नल ने महाराज जयपुर के पास-जो इनके परम मित्र थे-एक पत्र लिखा कि बड़ा ही खेद है कि आपने वेदों के महान् विद्वान् दयानन्द से बातचीत नहीं की॥ 34॥

जयपुरेश इदं दलमागतं समनुवाच्य गतोऽनुशयं भृशम्।
द्रुतविलम्बितनीतिचणो द्रुतं यतिविलोकनयत्नपरोऽभवत्।। 35।।

जब महाराज जयपुराधीश के पास यह पत्र पहुँचा तब इसे पढ़कर वे पश्चाताप करने लगे, और शीघ्र ही यह नीतिनिपुण राजा स्वामीजी के दर्शनों के लिये यत्न करने लगा॥ 35॥

श्यामवर्णरुचिरांगयुवानौ नागपर्वतवनादुपयातौ।
योगिनं नियमिनौ मिलनार्थं स्वागतादृतधियाऽऽसितुमुक्तौ।। 36।।

नाग पर्वत के जंगल से दो श्यामवर्ण सुन्दर शरीर वाले तरुण तपस्वी स्वामीजी के दर्शनार्थ आये। स्वामीजी ने आदर सत्कार के बाद उन्हें बैठाया॥ 36॥

व्रतीश्वरो व्रतरुचिरांगसौष्ठवः स्मिताननस्त्रिदशगिराऽऽलपन्मुदा।
स योगतो मुनियुगलेन योगधीः सतां मुदं ननु तनुते समागमः।। 37।।

ब्रह्मचर्य के व्रत से सुन्दर सुडौल शरीर वाले व्रतीश्वर दयानन्द ने मुस्कराकर आनन्द से योगविषयक देववाणी में उन दोनों से बातचीत की। सचमुच सज्जनों की संगति आनन्द को बढ़ाने वाली होती है॥ 37॥

योगीन्द्राननहिमशैलतः प्रभूता गीर्गंगा विबुधमनःप्रहर्षिणीयम्।
तैलंगान्त्रवनभूमिमार्द्रयन्ती नैर्मल्यात् सुगुणफलांचितां वितेने।। 38।।

योगीन्द्र के मुखरूपी हिमालय से उत्पन्न हुई, विद्वान्‌रूपी हंसों के हृदयों को प्रसन्न करनेवाली, विमल वाणीरूपी गंगा ने उन तरुण तैलंग-देशवासी तपस्वियोंके हृदयरूपी वनभूमि को-आर्द्र करते हुए-उसको उत्तम गुणरूपी फलों से युक्त कर दिया॥ 38॥

मुनिवरवचनामृतेन सिक्ता तरुणतपोधनमानसोत्तमोर्वी।
शुभगुणवपनात्सुपुष्पिताग्रा समजनि देवमनोहरा फलाढ्या।। 39।।

मुनिवर के वचनामृत ने उन तरुण तपस्वियों की हृदयस्थली को सींचा, और उसमें सद्‌गुणरूपी बीज बोया। जिससे उसमें उत्तम पुष्प खिल गये। कुछ समय बाद उत्तम फल भी लग गये, उन्हें देख देवताओं का मन भी ललचा उठा॥ 39॥

निस्सार्यामू कण्टकान् दर्परूपान् स्वान्तक्षोणीं शालिनीं पुण्यसस्यैः।
संपाद्य स्वां तापसौ संयमीशं नत्वाऽयातां मोक्षलक्ष्मीमभीप्सू।। 40।।

इन दोनों तपस्वियों ने अंत:करण की भूमि से अहंकार के काँटे निकाल डाले, जिससे वह स्थल पुण्य की धान्यसम्पदा से लहलहा उठा। वे मोक्षाभिलाषी होकर स्वामीजी को प्रणाम कर वहाँ से चले गये॥ 40॥

रामस्नेहिप्रथितगुरुराडागतोऽभूत्पुरेऽस्मिन्नाहूतोऽयं निगमविदुषा वादयुद्धाय धूर्त्तः।
नानाव्याजैरपसृत इतो वादभीत्या स नूनं मन्दक्रान्ता भरतवसुधा शोच्यातां हा गतेयम्॥ 41॥

अजमेर में उन दिनों रामस्नेही संप्रदाय का महंत आया हुआ था। वेदवक्ता स्वामीजी ने उसे शास्त्रार्थ के लिये बुलाया। वह अनेक बहाने बनाकर शास्त्रार्थ से डरता हुआ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। हा! सचमुच यह भारतभूमि ऐसे पाखण्डियों से घिरकर शोचनीय दशा को प्राप्त हो चुकी है॥ 41॥

स्वकल्पितमतान्तराधिपदिवान्धहृत्कम्पनैर्मुनीश्वरदिवाकरोग्रवचनांशुभि र्विश्वतः।
ततैस्तिमिरघस्मरैस्सुकृतिमानसांभोरुहां विकासिभिरकारि सोज्ज्वलतराऽऽर्यपृथ्वी भृशम्॥ 42॥

स्वकपोलकल्पित मतमतान्तरों के महन्तरूपी उल्लुओं के हृदयों को कंपित करने वाले, विश्व में फैले पाप-अंधकार को नाश करने वाले, पुण्यात्माओं के हृदय-कमलों को खिलाने वाले, दयानन्द-दिवाकर के उग्र वचन-किरणों से यह आर्य-वसुन्धरा आलोकित हो गई॥ 42॥

परिषदि ऋषिवाचां वेदपीयूषभाजां ततिरतिमधुराणां लोकभद्रंकरीणाम्।
मतिचतुरनराणां बर्हिणां वान्तरंगे मुदमतनुत विद्युन्मालिनीवाम्बुदाली॥ 43॥

सभाओं में वेदामृत बरसानेवाली, अति मधुर, लोककल्याणकारिणी ऋषिवाणी ने विद्युन्मालिनी मेघमाला की तरह बुद्धिमान् पुरुषरूपी मयूरों के मनों को आनन्द निमग्न कर दिया॥ 43॥

पृथ्वीसिंहनरेन्द्रदुर्मदबुधोद्दामद्विपालीवच:शुण्डादण्डविखण्डने कलहिनां पाखण्डिनां मण्डले।
दम्भेहामृगमर्दनेऽनृतजुषां गोमायुकल्पात्मनां विद्रावे जयति प्रचण्डयतिराट्शार्दूलविक्रीडितम्॥ 44॥

किशनगढ़ के राजा पृथ्वीसिंह के अभिमानी राजपंडितरूपी गजों के वाणीरूपी शुण्ड-दण्ड के तोड़ने में, कलहकारी पाखण्डियों के मण्डल को मरोड़ने में, दम्भरूपी भेड़िये के मर्दन में, असत्यवादीरूपी गीदड़ों को भगाने में, उग्र यतिराट्रूपी शार्दूल का पराक्रम विजयी हुआ॥ 44॥

सुखसागरतीरनिवासिनोमुनिहरेरुपकण्ठमिता बुधाः।
मतभंगमवाप्य पलायितामृगनिभा भयतो हरिणप्लुताः॥ 45॥

किशनगढ़ में स्वामीजी सुखसागर नामक तालाब के किनारे रहा करते थे। वहाँ से अनेक विद्वान्रूपी मृग वाद्विवाद में पराजित होकर हरिनों के समान भाग जाया करते थे॥ 45॥

क्षणमपि विमलेन चेतसा गिरममलामश्रृणोन्मुने र्नु यः।
न पुनरपरवक्त्रमैक्षत प्रवरगिरां महिमेदृगद्भुतः॥ 46॥

यदि कोई पवित्र हृदय से स्वामीजी की वाणी क्षणभर भी सुन लेता तो फिर उसे दूसरे का मुख देखने की आवश्यकता नहीं रहती। उत्तम वाणी की महिमा ही ऐसी अद्भुत है॥ 46॥

समलंकृतां नृपतिवृन्दैराजसभां महोत्सवसुशोभाम्।
प्रययौ विलोकितुमथोत्कः केतुमतीं महार्गलपुरीं ताम्।। 47।।

राजाओं से अलंकृत राजसभा को देखने के लिये उत्कंठित होकर, ध्वजपताका आदि से सजी महोत्सव वाली आगरा नगरी में मुनीन्द्र आये॥ 47॥

यस्यां रुचिरोज्ज्वलवेषभृन् नानामणिमौक्तिकमण्डना।
लक्ष्मीमदमत्तमना भृशं मुग्धा जनता समुपस्थिता।। 48।।

इन दिनों आगरा में सुन्दर स्वच्छ वेषवाली, अनेक रत्न, हीरे, जवाहर, मोती आदि से मण्डित लक्ष्मी-मद से उन्मत्त मनवाली धनिक तथा भोली भाली गरीब जनता भी खूब संख्या में जमा हुई थी॥ 48॥

स्वामिना हितकरैस्सुभाषणैर्नन्दिताऽत्र जनता मनोरमैः।
नन्दयत्यतिशयं हिता प्रिया मानसं तुदति गीरथोद्धता।। 49।।

ऋषि ने यहाँ मनोहर कल्याणकारी उत्तम व्याख्यानों द्वारा जनता को मुग्ध कर दिया। हितकारिणी प्रियवाणी हृदय को अतिशय आनन्द देती है, और उद्धत कठोर वाणी मन को खूब पीड़ा पहुँचाती है॥ 49॥

सर्वातिशायिगुणतस्सकलर्तुमध्ये जातो वसन्त इव यस्तिलको जनेषु।
योगी विरच्य लघुभागवतप्रदोषप्रादर्शपुस्तकमसौ विततार लोके।। 50।।

जैसे सब ऋतुओं में सर्वाधिक गुणवान् होने से वसन्त ऋतु श्रेष्ठ हैं वैसे ही स्वामीजी मनुष्यों में सर्वाधिक गुणी होने से भूषण रूप थे। यहाँ पर स्वामीजी ने भागवत पुराण के दोषों की निदर्शिका एक पुस्तिका लिखकर जनता में बाँटी॥ 50॥

मुनिवरवचनैः श्रुतहरिचरिता निजमतदुरितश्रवणविकुपिता।
मधुरिपुशरणा विकलितकरणा प्रहरणकलिता हरिमतजनता।। 51।।

एक मात्र विष्णु की शरणार्थी वैष्णव-जनता मुनिवर के मुख से भागवत प्रतिपादित कृष्णचरित्र पर टीकाटिप्पणी सुनकर अपने मत पर लगाये दोषों के श्रवण से क्रुद्ध एवं व्याकुल होकर स्वामीजी पर प्रहार करने को तैयार हो गई॥ 51॥

परिषदि कलहं विधातुमना ययौ परमियमतुलं मुनीन्द्रमनोबलम्।
नयनपथमलं विधाय पलायिता यतितिलकतनु र्जयत्यपराजिता।। 52।।

ये लोग झगड़ा करने के लिये सभा में आये। परन्तु मुनीन्द्र के अतुल मनोबल को देखकर भाग गये। यतिवर दयानन्द की मुखमुद्रा अपराजित रही॥ 52॥

भद्रोरस्को दीर्घसुबाहु र्वरभालोभद्रस्कन्धो मांसलदेहस्तनुबालः।
कम्बुग्रीवः शान्तमुखेन्दु र्मुनिचन्द्रोगोष्ठ्यां रेजे मत्तमयूराम्बकरम्यः।। 53।।

स्वामीजी की छाती विशाल, भुजाएँ लम्बीं, ललाट उन्नत, वृषभ से स्कन्ध, पुष्ट शरीर, छोटे-छोटे बाल, शंख समान गर्दन, चन्द्र सा सौम्य मुख और मस्त मोर की सी आँखें थीं॥ 53॥

-(शेष अगले अंक में)

योगेश्वर कृष्ण

देश-विदेश के बाल गोपाल

लेखकः पं. चमूपति

बाल कृष्ण का पौराणिक चरित्र इतना सर्वप्रिय हुआ है कि भारत तो भारत, अन्य देशों में भी इसे पूरी आस्था से अपनाया गया है। या तो पुराणकार सभी देशों के एक ही ढंग से सोचते हैं, एक-सी कथाएँ गढ़ते हैं, या फिर एक देश की मनोरम कल्पना का प्रतिबिम्ब सभी देशों की देवगाथाओं के आईने पर पड़कर सर्वत्र एक-समान चमक उठा है।

(1)

फारसियों का पहला राजा सैरेस, मीड राजा आस्टेजिस का दोहता, उसकी पुत्री मैंडेस का पुत्र था। आस्टेज को कंस की भाँति देववाणी ने सचेत किया था कि मैंडेस की सन्तान तेरा राजसिंहासन तुझसे छीन लेगी। उसने मैंडेस का विवाह एक साधारण पुरुष से कर दिया। देववाणी उसे फिर हुई। अब मैंडेस को गर्भ हो चुका था। जब उसके पुत्र का जन्म हुआ तो उसे मार डालने पर महामंत्री की नियुक्ति हुई। परन्तु उसने राजकन्या के पुत्र को स्वयं मारने के स्थान में इस कार्य का भार एक ग्वाले के कंधों पर डाल दिया। ग्वाले के घर एक मरा हुआ बालक पैदा हुआ था। ग्वालिन ने अपना मरा हुआ बच्चा पति को दे दिया और उसके स्थान में राजा के दोहते से अपनी शून्य गोदी को हरा-भरा किया। वजीर को मरा हुआ बच्चा दिखा दिया गया और वह सन्तुष्ट होकर वापस लौट आया। राजा आस्टेज दूसरा कंस और यह ग्वालिन दूसरी यशोदा ही तो हैं!

(2)

रोम नगर के संस्थापक दो यमज-भाई थे-रोम्यूलस और रेमस। ये न्यूमिटर की कुमारी लड़की की सन्तान थे। लड़की ने वेस्टा देवता की पुजारिन बनकर आयु-पर्यन्त कुमारी रहने का व्रत लिया था। परन्तु मार्स देवता ने उसके गर्भाधान कर दिया। लड़की के पिता को उसके भाई ने राजसिंहासन से च्युत कर प्रवासित कर दिया था। वर्तमान राजा को, जो लड़की का चाचा था, भतीजी के सन्तान हो जाने पर क्रोध आया। उसने इन्हें संदूक में बन्द कराकर टैबर नदी में डाल दिया। समय गुजरने पर ये एक गड़रिये के हाथ में जा पड़े। उसने इनका पितृवत् पालन-पोषण किया। राजा को पता लगा तो उसने इन्हें पकड़वा मँगाया। परन्तु इन्होंने कुछ तो अपने पराक्रम से, और कुछ मित्रों की सहायता से स्वयं राजा को मार डाला और अपने प्रवासी नाना का खोया हुआ राज्य उसे फिर दिला दिया, जैसे श्री कृष्ण ने उग्रसेन को

दिलाया था। इनका बाल-काल वर्तमान रोम के आस-पास बीता था। वहाँ इन्होंने नगर बसाकर अपनी राजधानी वहीं स्थापित की।

(3)

पुराने प्रतिज्ञा-पत्र में वर्णित मूसा का वृत्तान्त भी श्री कृष्ण के शिशुकाल के वृत्तान्त से मिलता-जुलता-सा है। मिस्र के राजा की आज्ञा से उसे एक किश्ती में डालकर नील दरिया में फेंक दिया जाता है। वह राजा की पुत्री के हाथ जा पड़ता है। स्वयं रानी उसका पालन करती है। बड़ा होने पर उसके पार गुजर जानें के लिए नील नदी दो टूक हो जाती है। उस कथा में घटनाओं का क्रम बदल गया है। परन्तु मुख्य-मुख्य घटनाएँ, यथा घर से प्रवास और दरिया का दो टूक होना, हैं वही, जो कृष्ण के बाल-काल में घटी थीं।

(4)

वर्तमान लेखक अपनी अफ्रीका-यात्रा में उगांडा नाम प्रान्त में पहुँचा। वहाँ के सम्बन्ध में एलवर बी0 लायड ने स्वरचित पुस्तक "उगांडा से खुर्तूम" में एक कथा लिखी है जो श्री कृष्ण के चरित से मिलती जुलती है। कथा यह है-

बन्योरो राजा बन्दूदू ने नियम बनाया था कि उसकी किसी कन्या का विवाह न होगा। उसके एक लड़की हुई नीनंवीरो। उसके घर के चारों ओर बाड़ लगा दी गई। उस बाड़ में आने-जाने का कोई रास्ता न था। नृदेव ईसिंव्वा उस बाड़ के ऊपर से नीनंवीरो के पास गया और चार दिन उसके पास रहा। नीनंवीरो के बच्चा हुआ जिसे उसने एक दासी द्वारा एलबर्ट झील में फिंकवा दिया। लड़के का नाम न्दाहुरा था। उसे किसी ग्वाले ने पाला। उसी ग्वाले के पास राजा की गायें रहती थीं। एक दिन राजा अपनी गायों को देखने गया। वहाँ न्दाहुरा ने अवसर पाकर उसे मार डाला और स्वयं राजसिंहासन पर बैठ गया। उसके समय में राज्य को बड़ी समृद्धि प्राप्त हुई।

इन कथाओं में पौराणिक बाल गोपाल की प्रतिकृति स्पष्ट है। मूल-कथा का जन्म कहीं हुआ हो, उसकी मनोहरता में सन्देह नहीं है। श्रीकृष्ण के बाल-चरित के कुछ भागों की सुन्दरता सार्वभौम है। भारत का विशेष कृष्ण जिसको किसी ने चुराया नहीं और जिसकी नकल हो सकनी असम्भव है, 'महाभारत' का कृष्ण है। बाल कृष्ण कविता की वस्तु है, प्रौढ़ तथा वृद्ध कृष्ण वास्तविक जीवन की। हमारा नमस्कार दोनों को है। इस जीवनी में हमने दोनों अंशों का यथायोग्य समन्वय कर दिया है। पाठक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कृष्ण की स्वाभिमत विभूति का अध्ययन करें। ❋❋❋

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई?

लेखकः पं० रामचन्द्र देहलवी

मैं चुप हो गया क्योंकि उन्होंने ठीक बात कह दी। विशेष कहने की कोई आवश्यकता नहीं रही है यह स्थिति है। भाई की वृत्ति भी इतनी बिगड़ चुकी है। पैमाने की वह पवित्रता, जिसका मैंने जिक्र किया था, वह समाप्त हो गई।

इस प्रकार की अनेक खराबियाँ आज आप अपने समाज में देख सकते हैं। भगवान् ने इन्हीं खराबियों को रोकने के लिये खानदानों में तीन पैमाने तैयार किये थे। बहन भी होगी, भाई व बाप भी होंगे और धर्मपत्नी भी होगी, और सब साथ रहते हैं। इनकी पवित्रता के बारे में किसी को कोई संदेह नहीं होता?

एक बार बाजार में भाई–बहिन आपस में बातें कर रहे थे। उम्र का थोड़ा ही फर्क था। अन्तर होगा कोई दो या ढाई साल का। किसी ने कहा–"**कितने बेहूदे हैं? खड़े होकर बाजार में सरेआम बातें कर रहे हैं, न जाने कौन हैं कौन नहीं?**" उनको वहां जानने वाला एक आदमी था, उसने कहा–"**तुम्हें मालूम नहीं! ये दोनों भाई बहिन हैं। अपने स्कूल से दोनों पढ़कर आये हैं और घर को जा रहे हैं।**" उसने कहा "**अच्छा यह बात है तो कोई हर्ज की बात नहीं है।**" तबियत से गन्दा ख्याल हट गया।

भाई बहन कहने का मतलब यह है कि वहां अपवित्रता है ही नहीं। वह तो परिवार का अभिन्न अंग है। जो कि आनन्दधाम है। वह ऐसा आश्रम (रिट्रीट) है जहां यदि आदमी के जजबात भड़के हुए भी हैं तो घर में आकर शांत हो जायेंगे या उनको शांत करना पड़ेगा।

इसलिये जीवन में शांति बनाये रखने के लिये हमें उन पैमानों को सच्चा रहने देना चाहिये। जिससे कि हम जब समाज में कार्य करने निकलें तो हमारे कार्य से या व्यवहार से समाज की शांति भंग न हो जाये। अमन कायम रहे। तब यह दुनियां स्वर्ग हो जाएगी।

'य आत्मदा बलदा' इस मंत्र के अनुसार जिसने अपने को समझ लिया है वह गलत काम कर ही नहीं सकता है। जोशी अस्पताल में जहां मेरा ऑपरेशन हुआ था तो डॉक्टर ने मुझे वहां घूमने के लिये कहा। मैं निकट के अजमल खां पार्क में घूमने जाया करता था। वहां मैं कुछ देर बैठा करता था। लोग प्रश्न पूछा करते थे।

एक दिन एक सज्जन पुरुष ने मुझसे पूछा कि "**क्या मांस खाने वाला कोई व्यक्ति महात्मा हो सकता है?**" मैंने कहा "**बिल्कुल भी नहीं**" क्योंकि उसने अपनी आत्मा की बेइज्जती की है, अपनी आत्मा क्या कभी चाहती है कि कोई उसके शरीर को नष्ट कर मार दे? प्रत्येक आदमी अपनी रक्षा करना

चाहता है।

एक बार किसी नदी के किनारे-याद न रहा गंगा थी या यमुना? किसी ने यह शोर मचा दिया कि '**नदी में पानी बढ़ रहा है**'-वहां हजारों आदमी स्नानार्थ गये हुए थे। वहां इतना सुनकर लोगों में ऐसी भगदड़ मची? कि लोग अपनी-अपनी जान बचाने के लिये बेतहाशा भागे। कुछ पता ही नहीं चला कौन कहाँ चला गया? कोई दब गया, कोई मर गया। किसी का बच्चा छूट गया, किसी का सामान छूट गया। एक भयंकर स्थिति व दृश्य उपस्थित हो गया जरा सी देर में। ये सब क्या था? आत्मरक्षा का प्रयत्न था।

मया जार मोरे कि दाना कशस्त।
कि जांदारदो जांनशीरी तर अस्त।।

इसका अर्थ यह है कि चींटी को न सता कि जान रखती है और जान सबसे प्यारी चीज है।

जान तो सभी को प्यारी है तो जिसने यह समझ लिया कि मेरी जान मुझे प्यारी है तो अन्य को भी वैसी ही होगी। फिर क्या वह दूसरी जान को मारेगा? अगर वह दूसरी जान को मारता है तो स्पष्ट है कि वह अपनी आत्मा की हुक्मउदुली अर्थात् बेइज्जती करता है।

इस प्रकार का आदमी महात्मा कैसे हो सकता है? यह साधारण आत्माओं की कोटि में भी नहीं आता, वह पतितात्मा है। क्योंकि वह ऐसा काम करता है जो उसे नहीं करना चाहिये।

किसी को दंड देना और चीज है। दण्ड सुधार के लिये है। लेकिन जो लोग अपनी जबान के जायके के लिये, दूसरों के गोश्त से अपने को मोटा बनाने के लिये जीवों की हत्या कर देते हैं वे पापी हैं। ऐसा उनको नहीं करना चाहिये।

यह आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अर्थात् जिसके शासन को, जिसकी शिक्षा को सभी विद्वान लोग स्वीकार करते हैं। कोई ऐसा विद्वान् नहीं है जो उसके नियमों को स्वीकार न करता हो चाहे वह खुदा को मानता हो या न मानता हो। वह यह कह सकता है कि मैं ईश्वर को नहीं मानता किन्तु उसके शासन से इन्कार नहीं कर सकता।

जो आदमी शासन को मानता है शासक को नहीं मानता, इन्तजाम को मानता है, मुन्तजिम को नहीं मानता, उसमें अभी आधी बेवकूफी मौजूद है। क्योंकि दुनियां में क्या कोई इन्तजाम बगैर मुन्तजिम के हो सकता है? क्या कोई शासन कभी बगैर प्रशासक के हो सकता है?

एक सज्जन मुझसे कहने लगे कि-"**हमारे जो प्रधानमंत्री साहब हैं वह गांधी जी की सोहबत में रहकर भी ईश्वर को नहीं मानते हैं"-मैंने पूछा "इन्तजाम को मानते हैं कि नहीं?"** कहने लगे कि "**इन्तजाम को मानते हैं।**" तो मैंने कहा "**अभी उनका ज्ञान पूरा नहीं है**" इस सम्बन्ध (ईश्वर के सम्बन्ध) में वे पूरे वाकिफ नहीं कहे जा सकते। इसलिये आधे नावाकिफ कहे जायेंगे। चाहे कितने ही बड़े क्यों न हों?

इस बारे में हमें स्पष्ट कहना पड़ेगा जो इन्तजाम को माने और मुन्तजिम को न माने तो वह शख्स पूरे ज्ञान की बात नहीं करता।

सूर्य का बराबर बाकायदा निकलना, चाँद का धीरे-धीरे घटना, बढ़ना सब किसी नियामक, शासक या मुन्तजिम को सिद्ध करते हैं, इसी के आधार पर अपने कार्यक्रम नियत करते हैं, तारिखें मुकर्रर करते हैं। नहीं तो कैसे वर्ष का अनुमान लगाया जाये? ये कार्यक्रम किस आधार और विश्वास पर आधारित है?

यह सब बातें प्रभु के अटल नियम के आधार पर कह रहे हैं। उसी के नियम से निश्चित समय पर साल पूरा हो जाता है, तो जो लोग नियम को मानते हैं नियामक को नहीं मानते, इन्तजाम को मानते हैं, मुन्तजिम को नहीं मानते। प्रबन्ध को मानते हैं, प्रबन्धक को नहीं मानते। वे आधे बेवकूफ हैं। यह अज्ञानता, नावाकफियत लोगों से धीरे-धीरे दूर होगी। तो इस मंत्र में प्रभु के शासन के बारे में भी कहा गया है।

एक साहब ने मुझसे पूछा कि-"**जब जीवात्मा उल्टे काम करता है, जैसे कहा जाता है वैसा नहीं करता तो भगवान् के लिये आवश्यक है कि वह उसे शिक्षा दे।**" तो उस शिक्षा देने का विषय बिल्कुल अलग है उसे '**तनासुख**' कहते हैं। तनासुख के शब्दिक अर्थ जायल (आवागमन) करना है, पुराना शरीर जायल करके नया शरीर देना है।

मुसलमान तमासुख मानते हैं तनासुख नहीं मानते। तनासुख अर्थात् मस्ख कर देना अंग्रेजी में उसके लिए ट्रांसफार्म शब्द आता है। तो वे ट्रांसफोरमेशन तो मानते हैं किन्तु ट्रांसफॉरमाइग्रेसन नहीं मानते।

मैंने उनसे एक बार यह पूछा कि क्या जिन लोगों ने खुदा का हुक्म नहीं माना था-कि हफ्ते के रोज मछली का शिकार न करना, कुछ लोगों ने जबान के स्वाद के लालच में किसी न किसी प्रकार का शिकार किया-तो खुदा नाराज हो गये थे और उसने उनको बन्दर और सूअर बना दिया, देखिये कुर्आन में लिखा हुआ है-

मल्लअनहुल्लाहु व गजिबा अलैहि।

व जअल मिन्हुमुल् किरदत वल् खनाजीर।। (सूरह 5, रूकू 9, आयत 60)

अर्थ- जिन पर खुदा ने लानत की और उन पर अपना गजब नाजिल किया है और बाज को बन्दर और बाज को सूअर बना दिया।

हनफी साहेबान तो यही मानते हैं कि जैसी उनकी नौ है, जाति है स्पीसीज होती है उसी के मुआफिक खुदा ने उनको बना दिया। लेकिन अब जो अहमदी लोग हैं वे ऐसा नहीं मानते-तो उन्होंने जवाब दिया कि-"**पण्डित जी नहीं, उनकी सूरतें नहीं बदलीं, रहे तो वे आदमी ही किन्तु उनकी आदतें बन्दर और सूअर जैसी हो गई।**"

मैंने कहा-"**यह तो और भी बुरा हुआ। आदमी रहते हुए उनकी आदतें बन्दर और सूअर जैसी**

हो गई।"

जरा गौर कीजिये कि "**अगर सूअर की आदत वाला आदमी मेरे मकान की ओर आ रहा हो तो वह मेरे पास आएगा या कहीं और किसी तरफ जाएगा? सूअर की आदत तो गन्दगी खाने की है। तो वह तो गन्दगी की तरफ ही जायेगा। यह तो अच्छा नहीं मालूम देगा कि शक्ल आदमी जैसी और आदत सूअर जैसी?**" यह सुनकर वे शर्माने लगे।

आगे मैंने कहा–"**यदि शक्ल तो आदमी की होगी और आदत बन्दर की होगी तो बिना कारण दरख्त पर चढ़ जायेगा, कभी कोई चीज तोड़ेगा, कभी कोई चीज गिरा देगा। दूसरों का नुकसान करेगा।**" तो आपका यह सुधार, सुधार नहीं होगा बल्कि बिगाड़ होगा। पुरानी बात ही ठीक है कि खुदा ने उनको "**बन्दर और सूअर बना दिया।**"

कुर्आन के इस लेख से तो हमारी बात सही हो जाती है कि जब इन्सान, इन्सान के योग्य नहीं रहता तो परमात्मा उसे नीची योनि में भेज देता है।

हमारे एक मित्र हैं। वे एक भजनीक के बारे में कुछ बातें कर रहे थे। कहते थे कि वे बड़े मजाकिया आदमी हैं। जब मजाक उड़ाते हैं तो ईश्वर का भी मजाक उड़ा देते हैं। कहा करते हैं कि–"**ईश्वर ने यह क्या किया कि किसी को अमीर बना दिया और किसी को गरीब बना दिया, किसी को लंगड़ा बना दिया और किसी को लूला? किसी को एक आँख दी और किसी की दोनों ही फोड़ दीं? और फिर ऐसी दुनियां बनाकर खुद क्या मजे ले रहा है? कैसा खुश हो रहा है?**"

वैदिक सिद्धान्त से ईश्वर के ऊपर यह आक्षेप आ ही नहीं सकता। उसने जो कुछ भी किया हैं न्यायपूर्वक किया है, उसकी तुला सच्ची है, जिसने जैसा किया है, उसी के अनुसार उसे फल मिल रहा है। '**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**' जो कर्म किये हैं उनका फल तो अवश्यमेव भोगना ही पड़ेगा।

जो लोग शरीर का दुःख भोग रहे हैं निश्चित रूप से उन्होंने अपने शरीर से दूसरों को कष्ट पहुँचाया है। शरीर से तीन पाप अर्थात् चोरी, व्यभिचार और हिंसा किये जा सकते हैं उन पापों के करने के परिणाम स्वरूप मनुष्य को शारीरिक कष्ट होते हैं।

दिल्ली में एक मुसलमान फकीर थे जिनकी दोनों टांगे ही नहीं थी अर्थात् बहुत ही छोटी थीं। पैदायशी ही नहीं थी। उनके लिये चलना बड़ा मुश्किल था क्योंकि वे डगें लम्बी नहीं भर सकते थे क्योंकि उनकी टांगे बहुत छोटी थी। जब उन्हें सड़क पार करनी होती थी तो वे किसी की मदद से सड़क पार किया करते थे। उन्होंने एक बार कहा–'अल्लाह के नाम पर कुछ दे दीजिये।' मैंने कहा उस अल्लाह के नाम पर जिसने बिना वजह आपकी टांगे ले लीं और दूसरों को दे दीं।

देखिये कितने और लोग हैं उन सबकी टांगे हैं। वे सब अच्छे ढंग से चलते फिरते हैं और आपको चलने फिरने में इतनी तकलीफ उठानी पड़ती है। अभी आप इतने मजबूर थे कि दूसरे आदमी की मदद से सड़क पार कर सके। ऐसे खुदा के नाम पर हम तो आपको कुछ नहीं देना चाहते। '**कहिये आपका मजहब क्या कहता है?**' मजहब तो कहता है कि–'**खुदा कादिर है जो चाहे सो करे।**'

–(शेष अगले अंक में)

जीवेम् शरदः शतम्

रचयिताः लाखनसिंह भदौरिया, मैनपुरी (उ० प्र०)

कर्म करते हुये, सौ बरस तक जियें,
धर्म धारण किये, सौ बरस तक जियें।

सौ बरस तक नयन-ज्योति, जगती रहे।
सौ बरस तक श्रवण-शक्ति, सुनती रहे,
सौ बरस तक गिरा, गान गाती रहे।
सौ बरस तक युवा शक्ति, माती रहे।

भाव-भरते हुये, सौ बरस तक जियें।
चाव-भरते हुये सौ बरस तक जियें।

प्रभु, पराधीन होकर न जीना पड़े।
श्रम-पसीना बहे विष न पीना पड़े।
हम अमृतपुत्र हैं भान होता रहे।
कर्म में धर्म का ध्यान होता रहे।

सिन्धु-तरते हुये, सौ बरस तक जियें।
शक्ति-भरते हुये सौ बरस तक जियें।

सत्य संकल्प का बल, मिला है हमें।
प्राण-प्रज्ञा, प्रभा बल, मिला है हमें।
हर कठिन प्रश्न का हल मिला है हमें।
दिव्य जीवन, सुफल, फल मिला है हमें,

नित सँवरते हुये, सौ बरस तक जियें।
कर्म करते हुये सौ बरस तक जियें।

देव, की देन को, देवता रूप दें।
त्याग, तप तेज की दिव्यता धूप दें।
ईश, विश्वास हारे नहीं राह में।
लोक-मंगल बसे बोध में चाह में।

-शेष पृष्ठ सं. 27 पर

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों की वैदिकता एवं प्राचीनता

लेखकः उदयनाचार्य, निगम-नीडम्, पिडिचेड, गज्वेल, मेदक, तेलंगाणा

मानव जीवन एक यात्रा है। यह यात्रा है भवसागर से तरने की। यात्रा सदा ही अपने मूल निवास स्थान से प्रारम्भ होकर पुनः वहीं समाप्त होती है। इस प्रवास काल में व्यक्ति को अनेक प्रकार की असुविधाएँ और कष्ट सहन करने पड़ते हैं तथा पर्याप्त परिश्रम भी करना पड़ता है। पुनरपि यह यात्रा व प्रवास कुछ ही दिनों का है, प्रवास को समाप्त कर पुनः अपने घर पहुँचना ही है, ऐसा समझकर व्यक्ति प्रवास-काल के कष्टों को सहर्ष सह लेता है। यात्रा जितनी योजनाबद्ध होगी, उतनी ही सुख एवं शान्ति युक्त होगी। मानव-जीवन की यात्रा भी अनेक दुःखों, विघ्नों एवं कष्टों से युक्त है और इसकी परिपूर्णता के लिए आसमन्तात् अर्थात् सर्वविध श्रम-परिश्रम, पुरुषार्थ की आवश्यता है। बस इसी यात्रा विशेष की परिपूर्णता के लिए, सफलता के लिए योजनाबद्ध व्यवस्था ही आश्रम व्यवस्था है। मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा को पृथिवी लोक से प्रारम्भ कर अन्तरिक्ष लोक में पहुँचता है, अन्तरिक्ष-लोक से द्युलोक में पहुँचता है और वहाँ से स्वर्गलोक में पहुँचकर वहाँ स्व-स्थान की नित्य एवं शाश्वत आनन्दानुभूति प्राप्त करता हुआ स्व-जीवन-यात्रा को समाप्त कर लेता है-

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमाऽरुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्॥ -(यजु. 17.67)

अतः मानवों की यह यात्रा चार पड़ावों से युक्त है। वे पड़ाव हैं-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। यही आश्रम-व्यवस्था वैदिक काल में लोक-व्यवस्था के नाम से व्यवहृत होती थी। जो कि मन्वादि के काल से आश्रम व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि नाम मात्र ही अर्वाचीन है, न कि व्यवस्था। अब हम संक्षिप्त में यह दिखलाते हैं कि इस आश्रम-व्यवस्था (लोक-व्यवस्था) का उल्लेख वेद में अन्यत्र कहाँ-कहाँ है।

वेद कहता है-"**प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना**" (साम.51) व्यक्ति को ब्रह्मचर्य जीवन में **दैवोदास** अर्थात् देवों=माता, पिता, आचार्य और विद्वानों का दास, सेवक बनना चाहिए। जिससे वह अपने ब्रह्मचर्याश्रम में आयु, विद्या, यश और सर्वविध बल प्राप्त कर सके। आगे वेद भगवान् कहता है कि **अग्निः**=अग्रे-णी अर्थात् गृहस्थाश्रम में अपनी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक दृष्टि से अग्रसर हो, अधिक से अधिक विकसित हो और साथ में लौकिक जीवन-यात्रा की आनन्दानुभूति प्राप्त करें। मंत्र का आगे का कथन है- **देवः** = व्यक्ति वानप्रस्थाश्रम में अपनी जीवन-यात्रा को एक क्रीड़ा समझें। क्रीड़ा में जैसे सभी कष्टों, चोटों को हँसते हुए सहन करते हैं, वैसे ही अपनी जीवन-यात्रा के तृतीय पड़ाव में सभी

कष्टों को क्रीड़ांग समझकर सहर्ष तपोमय जीवन बिताना चाहिए, साधना-स्वाध्याय करना चाहिए, जिससे दिव्यत्व प्राप्त हो। ऋचा का अन्तिम उपदेश है-**प्रमज्मना इन्द्रो न** = व्यक्ति को ब्रह्म में लीन होकर, ब्रह्माश्रमी, तुरीयाश्रमी बनकर इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्यवान् प्रभु के तुल्य आनन्दानुभूति, नित्यानन्द को प्राप्त करना चाहिए।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः संस्रते नाकमच्छ।। (साम. 73)

(समिधा) तीनों लोकों की प्रतिनिधि रूप समिधाओं से ब्रह्मचारी (अग्निः) ज्ञानाग्नि के रूप में (अबोधि) उद्बुध किया गया है। गृहस्थी को (प्रति-आयतीम्-उषासम्) प्रत्येक आने वाले उषःकाल में अर्थात् प्रतिदिन (जनानाम्) अपनी सन्तानादि बन्धु-मित्रों और अन्य तीन आश्रमियों का (धेनुमिव) धेनु की भांति निस्स्वार्थ भावना से एवं पूर्ण प्रीति-युक्त होकर पालन-पोषण करना चाहिए। इस कर्त्तव्य पालन के पश्चात् उसी गृहस्थ की मोह माया में नहीं रहना चाहिए। अपितु (यह्वाः इव) पक्षियों के समान (बयाम्) शाखा को, घर को (प्रऽज्जिहानाः) त्यागकर वनस्थ होना चाहिए। उस वानप्रस्थाश्रम में तप से राक्षसी वृत्तियों का नाश कर, स्वाध्याय से ज्ञानाग्नि को, विवेक को प्रदीप्त करके संन्यासाश्रम में प्रविष्ट होना चाहिए। उस उत्तमाश्रम में (भानवः) सूर्य के समान ज्ञान-ज्योतिष्मान् संन्यासी (नाकम् अच्छ प्र सस्रते) मोक्ष की ओर अग्रसर होते हैं और तत्तुल्य ही निरन्तर परिभ्रमण करते हुए लोक-कल्याण के लिए अज्ञानान्धकार का नाश करते हैं।

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी।। -(अथर्व. 11. 5. 16)

(आचार्यः ब्रह्मचारी) आचार्य ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्याश्रमी होता है। (प्रजापतिः ब्रह्मचारी) प्रजापालक आदर्श गृहस्थ भी ब्रह्मचर्य व्रतों का पालन करने वाला होता है। (प्रजापतिः विराजति) वह आदर्श गृहस्थ तेजस्वी वानप्रस्थ बनता है और वह (विराट्) तेजस्वी वानप्रस्थ (वशी इन्द्रः) इन्द्रियों को सम्पूर्ण रूप से स्वाधीन कर चुका हुआ अर्थात् पापभावनाओं को नितान्त समाप्त कर चुका हुआ यति=संन्यासी (अभवद्) होता है।

यहाँ चारों आश्रमों के उल्लेख के साथ-साथ यह भी उपदिष्ट है कि चारों आश्रमों में भोग-विलासों को त्यागकर आदर्श ब्रह्मचर्यव्रतों का पालन करना चाहिए, जिससे अपनी और समाज की उन्नति होती है।

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविदम्।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः........... (यजु. 19. 67)॥

इस मंत्र से 'देहलीदीप' के समान दो विषय प्रकाशित होते हैं। एक तो श्राद्ध (पितृयज्ञ) जीवितों का होता है, न कि मृतकों का। दूसरा वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों की वैदिकता। इस मंत्र में कहा गया है कि 'जो पितर यहाँ हैं और जो पितर यहाँ नहीं हैं, उनमें (अविद्यमान पितरों में) भी जिन्हें हम जानते

हैं और जिन्हें हम नहीं जानते हैं। हे जातवेदः ! आप उन सबको जानते हैं और वे भी आपको जानते हैं।' इस मंत्र के आशय को समझने से पूर्व यह जानना आवश्यक है श्राद्ध किन पितरों का होता है? पिता, दादा और परदादा इन तीन पितरों का ही श्राद्ध करने का विधान सर्वत्र मिलता है। इन तीनों का ही विधान करने से एवं आगे के पितरों का विधान न होने से भी ज्ञात होता है कि श्राद्ध जीवितों का ही होता है, न कि मृतकों का। यतोहि एक व्यक्ति के जीवन काल (100 वर्ष की आयु) में प्रायः उक्त तीन पितर ही जीवित रह सकते हैं, अधिक नहीं। अस्तु, प्रकृतमनुसरामः। उन तीन पितरों में पिता गृहस्थाश्रम में, दादा वानप्रस्थाश्रम में एवं परदादा संन्यासाश्रम में रहते हैं। अब मन्त्रार्थ को समझें-जो पितादि पितर यहाँ घर में (गृहाश्रम में) विद्यमान हैं और जो पितर (दादा एवं परदादा) यहाँ (घर पर) वर्तमान नहीं हैं अर्थात् वानप्रस्थी तथा संन्यासी बन गये हैं। उनमें भी जिन्हें वानप्रस्थी= (दादा) पितरों को हम जानते हैं, क्योंकि वह एक स्थिर स्थान पर रहते हुए साधना करते हैं और जिन्हें=संन्यासी (परदादा) पितरों को हम नहीं जानते हैं, क्योंकि वे परिव्राट् हैं। हे जातवेदः!.....। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि 'जो पितर यहाँ हैं और जो यहाँ नहीं हैं, जिन्हें हम नहीं जानते हैं' यह बातें जीवित पितरों में ही घटेंगी, न कि मृतकों में। अतः आगे की बात 'जो यहाँ नहीं हैं, जिन्हें हम नहीं जानते' को मृतकों में घटाना परस्पर विरोध होगा, इसलिए इसका भी अर्थ जीवित पितर (संन्यासी) परक करना ही उचित है, जैसे कि ऊपर दिखाया गया है।

'पंचजनाः' शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य यास्क लिखते हैं कि-**"गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके चत्वारो वर्णा निषादः पंचम् इत्यौपमन्यवः"** (निरु. 3.7)। यहाँ पंचजनाः से चार वर्णों एवं निर्वर्ण निषाद का ग्रहण किया है। ऐसा ही चार आश्रमों तथा निराश्रमी (आश्रम धर्म का पालन न करने वाले) का भी ग्रहण किया है। **गां=वेदवाणीं धारयतीति गन्धर्वो ब्रह्मचारी**-वेद ज्ञान को प्राप्त करने वाला ब्रह्मचारी ही गन्धर्व है। ब्रह्मचर्याश्रम का उद्देश्य ही वेदविद्या की प्राप्ति है। **पितरः**=वानप्रस्थी, वृद्ध ज्ञानी पुरुष। **देवाः**=भौतिक जगत् से विरक्त होकर दिव्य लोक में विचरण करने वाले संन्यासी। **असुरः = असून् प्राणान् राति ददातीति असुरो गृहस्थी** प्राणदाता, जन्मदाता गृहस्थी ही असुर कहलाता है। **रक्षः=रहसि परोक्षे क्षिणोति नाशयति तिरस्करोति आश्रमधर्मं यः स रक्षः** अर्थात् जो प्रत्यक्षतः समाज की व्यवस्था के अनुसार किसी न किसी आश्रम में तो रहता है, पर परोक्षतः उन आश्रमधर्मों का पालन नहीं करता, उपेक्षा करता है, नाश करता है, वह राक्षस कहलाता है। इस प्रकार **'पंचजनाः'** के अन्तर्गत सभी वर्णों एवं आश्रमों को मानकर यास्क ने इन्हें वैदिक सिद्ध कर दिया है। क्योंकि ऋ. 10.53.4 और 8.63.7 में 'पंचजनाः' शब्द प्रयुक्त है। अतः उन दो मंत्रों में चार वर्णों एवं आश्रमों का उल्लेख है। साथ में यह भी ज्ञापित होता है कि यास्क के समय तक वर्णाश्रमधर्मों का पालन होता रहा।

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम्।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम्।। (ऋ. 7.13.1)

हे मनुष्यों (मतीनाम्) मनुष्यों के बीच (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के नायक (विश्वशुचे) सब को

शुद्ध करने वाले (धियन्धे) बुद्धि को धारण करने हारे (असुरघ्ने) दुष्ट कर्मकारियों को मारने व तिरस्कार करनेवाले (अग्नये) अग्नि के तुल्य विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशमान (यतये) यत्न करने वाले संन्यासी के लिए (मन्म) विज्ञान और (धीतिम्) धर्म की धारणा को तुम लोग (प्र भरध्वम्) धारण व पोषण करो, जैसे (बर्हिषि) सभा में (प्रीणानः) प्रसन्न हुआ राजा (भरे) संग्राम में (हविः) भोगने व देने योग्य अन्न को धारण करता है (अपि च द्रष्टव्य- ऋ. 7. 13. 1-3, 7. 14. 1-3 महर्षि दयानन्द भाष्य)।

इन्द्रः.......जघान वृत्रं यतिर्न (साम. 954)

(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमात्मा (यतिः न) संन्यासी के समान (वृत्रं जघान) उपासकों में विद्यमान अज्ञानान्धकार एवं पाप वासनाओं को नष्ट करता है।

यहाँ स्पष्ट रूप से संन्यासी का एवं उसके कर्तव्य कर्मों का उल्लेख है कि वह स्वयं इन्द्रियों का दमन करने वाला यति बनें, लोकैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणाओं का त्याग करना चाहिए और समाज में व्याप्त कदाचार, पाप भावनाओं तथा अज्ञानान्धकार रूपी बादलों को सूर्य की भांति छिन्न-भिन्न कर देना चाहिए अर्थात् संन्यासी को साधना से अपना आत्मोत्थान करते हुए निस्वार्थ भावना से लोकोपकार में अहर्निश संलग्न रहना चाहिए।

य इन्द्रः यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः।
ममेदुग्र श्रुधी हवम्।। (ऋ. 8.6.18)

हे इन्द्र, परमात्मन्! जो यति=संन्यासी हैं और जो भृगु=तेजस्वी, तपस्वी संन्यासी हैं, वे सब आपकी स्तुति करते हैं। हे ईश्वर ! मेरी भी स्तुति सुनो।

मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मला (ऋ. 10. 136. 2)

ल्ल मुनि=वनाश्रमी लोग वायुभक्षक होते हैं और पीतवर्ण के वस्त्र पहनते हैं।

इस मंत्र में वानप्रस्थियों का उल्लेख ही नहीं, अपितु उनके रंगीन पीत वस्त्रों तक का उल्लेख है।

मुनिर्देवस्य देवस्य सौकृत्याय सखा हितः (ऋ. 10. 136. 4)

मुनि=वानप्रस्थी लोग सभी देवों के मित्र और सत्कर्म करने वाले होते हैं।

अभी तक हमने इन दोनों आश्रमों की वैदिकता की पुष्टि में निदर्शनार्थ कुछ सार्थ मंत्र उपस्थित किये हैं। ऐसे और भी अनेकों मंत्र हैं, जिनसे इनकी वैदिकता सिद्ध होती है। उद्धृत मंत्रों से यह भी सिद्ध हो जाता है कि जब ये मंत्र मानव-समाज को प्राप्त हुए थे, तभी से इन आश्रमों का अस्तित्व था। इतना ही नहीं जब ऋषि लोग मंत्रों का दर्शन कर रहे थे, उस समय तक इन दो आश्रमों का भी अच्छा प्रचलन हो गया था। क्योंकि कुछ मंत्रों के द्रष्टा वैखानस ऋषि हैं। वानप्रस्थियों को ही प्राचीन (वैदिक) काल में वैखानस कहते थे। इन वैखानसों के नियम व व्रतों का उल्लेख जिस ग्रन्थ में हो, वह वैखानसशास्त्र कहलाता है। और इनकी स्वस्थता की कामना से गाया गया साम भी 'वैखानससाम' कहलाता है। वानप्रस्थियों को वैखानस इसलिए कहते हैं कि वे आकर्षणीय, सुन्दर हिरण्मयपात्र से ढके हुए परमात्मा का विशेषरूप से खनन, खोज, अन्वेषण करते हैं। -(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

मन की गुप्त शक्ति! मानुषी शक्तियों को वश में रखना और सन्मार्ग पर लगाना।

लेखकः पं० राजाराम प्रोफेसर

अपने मन में उत्तम विचारों को स्थान दो। वे विचार शीघ्र ही तुम्हारे बाह्य जीवन में उत्तम अवस्थाओं के रूप में प्रगट होंगे। अपनी आत्मिक शक्तियों को अपने वश में रक्खो। ऐसा करने से तुम अपने बाह्य जीवन को जैसा चाहो वैसा बना सकोगे। मुक्तिदाता और पापी मनुष्य में यही अन्तर है कि यह अपनी इन्द्रियों के वश में होता है, परन्तु उसकी इन्द्रियां उसके वश में होती हैं।

वास्तविक शक्ति और स्थाई सुख की प्राप्ति को इसके सिवाय और कोई मार्ग नहीं है कि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रक्खे, और अपनी आत्मा को पवित्र बनावे। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों के वश में होता है, वह सदैव निर्बल और दुःखी रहता है और संसार को उससे कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। यदि तुम संसार में सुख और ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हो तो तुम्हें उचित है कि राग द्वेष, काम क्रोध, लोभ मोह, रति अरति आदि मानसिक कषायों और वासनाओं को कम करो।

जितना तुम अपनी मानसिक अवस्थाओं के आधीन रहोगे, उतना ही तुम इस जीवन में दूसरों के आश्रय रहोगे और बाह्य सहायता की इच्छा करोगे। यदि तुम शांति और दृढ़ता से जीवन व्यतीत करना चाहते हो और प्रत्येक कार्य को पूर्ण रूप से करना चाहते हो, तो तुम्हें आवश्यक है कि अपने मन की सम्पूर्ण बाधा डालने वाली और समय–समय पर बदलनेवाली अवस्थाओं को अपने वश में करना सीखो। तुम्हें प्रतिदिन एकान्त में बैठकर अपने चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिये। इसी का नाम ध्यान करना है। ध्यान करने से चिंता दूर होकर मन में शांति उत्पन्न होती है और निराशा और निर्बलता के विचार निकल कर मन में शक्ति और आशा का संचार होता है। जब तक तुम्हें ऐसा करने में सफलता न होगी, तब तक तुम अपने जीवन के कार्यों और उद्देश्यों में अपनी मानसिक शक्तियों से सफलतापूर्वक काम लेने की आशा नहीं कर सकते। यह एक ऐसा उपाय है कि इससे मनुष्य अपनी भिन्न–भिन्न तितर बितर हुई शक्तियों को एक निश्चित मार्ग पर लगा सकता है और जो चाहे सो कर सकता है। जिस प्रकार किसी निकम्मी दलदली जमीन को उसके इधर–उधर गड्ढ़ों में भरे हुए पानी को एक अच्छी नाली में ले जाकर एक हरे भरे लहलहाते हुए खेत या फले फूले बगीचे के रूप में बदल सकते हैं, उसी प्रकार जो मनुष्य शांति प्राप्त करता है और अपने आंतरिक विचारों को अपने वश में करके सन्मार्ग पर लगाता है, वह अपनी आत्मा को मुक्त करता है, और अपने हृदय और जीवन को माला माल करता है।

जितना तुम अपने भावों, इच्छाओं और विचारों को अपने वश में करने में सफलता प्राप्त करोगे,

उतना ही तुम अपने भीतर एक नवीन और अव्यक्त शक्ति उत्पन्न होते हुए देखोगे और तुम्हें शांति और बल प्राप्त होगा। तुम्हारी भीतरी अव्यक्त शक्तियाँ स्वयमेव प्रगट होने लगेंगी। इससे पहले तुम्हारा उद्योग निर्बल और निष्फल रहता था, परन्तु अब तुम शांत चित्त होकर काम करने लगोगे और सफलता तुम्हें अवश्य प्राप्त होगी। इस नवीन शक्ति और शांति के साथ तुम्हारे भीतर एक प्रकाश उत्पन्न होगा जिसका नाम ब्रह्मज्ञान वा ईश्वर-दर्शन है। अब तुम्हारा अज्ञान और अंधकार जाता रहेगा और तुम्हें प्रत्येक वस्तु स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष दिखलाई देने लगेगी। इस ईश्वर दर्शन और आत्मज्ञान के साथ तुम्हारी बुद्धि और विचार शक्ति भी बढ़ जाएगी और तुम्हारे भीतर वह शक्ति पैदा हो जाएगी कि जिसके द्वारा तुम भावी घटनाओं को पहले से ही जान सकोगे और अपने श्रम और उद्योग का फल भी ठीक-ठीक पहले से ही विचार सकोगे। जितना परिवर्तन तुम्हारी आंतरिक अवस्था में होगा, उतना ही तुम्हारे वाह्य कार्यों में भी होगा एवं दूसरों के प्रति तुम्हारी मानसिक अवस्था में जितना परिवर्तन होगा, उतना ही तुम्हारे प्रति उनकी मानसिक अवस्था में में भी परिवर्तन होगा। जितनी तुम विचार की नीच, पतित, निर्बल और नाशक शक्तियों पर विजय प्राप्त करोगे, उतनी ही उच्च, पवित्र, और प्रबल विचारों से उत्पन्न होनेवाली शक्तिप्रद और उन्नति शील लहरें तुम्हारे भीतर प्रगट होंगी। तुम्हारे हर्ष की कोई सीमा न रहेगी और तुम उस बल, शक्ति और आनंद का अनुभव करने लगोगे कि जो केवल इन्द्रिय-निग्रह और आत्म-विजय से उत्पन्न होते हैं। यह बल, शक्ति और आनंद स्वतः स्वयमेव सूर्य के प्रकाश की भाँति निरंतर दूसरों पर अपना प्रभाव डालते रहेंगे। तुम्हें इसका ज्ञान तक भी न होगा। दृढ़ चित्त मनुष्य स्वतः तुम्हारे चहुँओर जमा रहेंगे और तुम्हारा प्रभाव दिन दिन बढ़ता जाएगा। जितना तुम्हारे विचारों में परिवर्तन होगा, उतना ही तुम्हारे बाह्य जीवन में भी परिवर्तन होगा।

मनुष्य के शत्रु उसी के घर के लोग होते हैं। जो मनुष्य अपने को उपयोगी और बलवान् बनाना चाहता है और प्रसन्न चित्त रहना चाहता है, उसे आवश्यक है कि गंदे, नापाक और घृणित विचारों को अपने मन में न आने दे। जिस प्रकार किसी घर का बुद्धिमान स्वामी अपने सेवकों पर शासन करता है और अपने मित्रों और अतिथियों को आमंत्रित करता है, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि वह अपनी इच्छाओं को अपने वश में करे और बलपूर्वक कह सके कि मैं अमुक विचारों को ही अपने मन में प्रवेश करने दूँगा। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करने और अपनी इच्छाओं का विरोध करने में तनिक भी सफलता प्राप्त कर लेता है, उसकी शक्ति बहुत कुछ बढ़ जाती है और जो मनुष्य स्वार्थपरता, और इन्द्रियलोलुपता को बिलकुल निकाल देता है अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ जिसके वश में हो जाती है और जो अपने विचारों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है, उसके अंतरंग में अपूर्व शक्ति और शांति का प्रादुर्भाव होता है और उस बुद्धि का विकास होता है कि जिसका कभी उसने स्वप्न में भी अनुमान नहीं किया था। वह अब इस बात का अनुभव करने लगता है कि संसार की जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे सब उसकी रक्षा और सहायता के लिए तैयार हैं, जिसकी इन्द्रियाँ जिसके वश में हैं और जो अपनी आत्मा का सर्वाधिकार सम्पन्न स्वामी है। ❁❁❁

कठिनता और व्याकुलता

अनुवादकर्ता–ठा० कल्याणसिंह शेखावत

जो मनुष्य बनना चाहे उसको चाहिये कि वह अपने हृदय पर अधिकार जमावे, लालसाओं को नष्ट करके उन पर अपना सिंहासन बनावे, आशा और भय के राजविद्रोह का दमन करे और स्वतंत्रता से अत्युन्नत राज्य भोगे। **–शेली**

क्या तुम निशानां चूक गये हो? चूक गये तो क्या हुआ, अब भी तो निशाना चमकता हुआ दिख रहा है। फिर प्रयत्न करो। क्या तुम दौड़ते–दौड़ते गिर गये हो? थोड़ा श्वास ले लो और फिर दौड़ो।

–इला व्हीलर विलकाक्ष।

यह कहना कि संकट और व्याकुलता से भी बहुत कुछ आनन्द मिलता है लोगों को बहुधा असंगत प्रतीत होगा। परन्तु यह कहना बिलकुल यथार्थ है। सत्य बाहर से असत्य दिखाई देता है। मूर्खों की समझ से जो दु:ख हैं धीमानों की समझ में वे सुख हैं। संकट पहले अज्ञान और दौर्बल्य से उत्पन्न होते हैं और फिर ज्ञान और शक्ति की प्राप्ति कराते हैं।

सत्य जीवन से जैसे–जैसे ज्ञान प्राप्त होता जाता है वैसे–वैसे ही कठिनताएँ घटती जाती हैं, और नाशमान! कोहरे की नांई झंझटें और अड़चनें क्रमश: हटती जाती हैं। संकट या कठिनता कार्य में नहीं होती किन्तु जिस मनोभाव और पौरुष से वह कार्य किया जाता है उसमें होती है। बालक जो काम कठिन प्रतीत होता है वह मनुष्य के परिपक्व मस्तिष्क को कठिन ज्ञात नहीं होता। इसी प्रकार अज्ञानी को बात कठिन लगती है वह ज्ञानी को कठिन नहीं दिखती।

अशिक्षित और कच्चे बालक को एक सरल पाठ सीखने में भी कितनी भारी और दुर्दमनीय कठिनता प्रतीत होती है। उसके पारंगत होने में उस बालक को बहुत समय तक कितनी चिन्ता और श्रम उठाना पड़ता है। कठिनता की उन्नत दीवार को फाँदने के आशारहित विचार में वह कितने अश्रु टपकाता है। परन्तु ध्यान से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि वह कठिनता उस पाठ में नहीं, किन्तु उस बच्चे की नामसझी में होती है। उस कठिनता का जीतना और सिद्ध करना ज्ञान की वृद्धि और उस बच्चे के स्वास्थ्य, सुख और उपयोगिता के हेतु बहुत ही आवश्यक है।

उपर्युक्त बालक के दृष्टान्त की नांई मनुष्य की वृद्धि और उन्नति के हेतु जीवन की कठिनताओं को जीतना और उनके पारंगत होना आवश्यक है। जितनी कठिनताएँ जीती जाती हैं उतना ही अनुभव, ज्ञान और विवेक प्राप्त होता है। ऐसा करना एक नवीन पाठ को पढ़ना और एक कार्य को सफलता के साथ करने के सुख का प्राप्त करना है।

संकट का यथार्थ रूप क्या है? संकट उस स्थिति का नाम है जो सम्पूर्णता से समझ में नहीं आती।

इसलिये उसके दूर करने के हेतु मनुष्य को अधिकतर ज्ञान, और गम्भीरता बुद्धि का प्रयोग करना चाहिये। यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसमें अनभ्यस्त पौरुष आन्तरिक बल और गुप्त शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। अतः कठिनता एक भेष बदला हुआ स्वर्गदूत है। कठिनता मनुष्य का ऐसा मित्र और गुरु है कि उसकी शिक्षा यदि शान्ति से सुनी जाय और यथोचित समझी जाय तो वह महत्तर आनन्द और उच्चतर ज्ञान को प्राप्त कराती है।

कठिनता के बिना किसी प्रकार की उन्नति, विस्तरण और परिवर्त्तन नहीं हो सकता। यदि प्रतिघात न होते तो संसार एक ही जगह ठहर जाता और मनुष्यजाति थकान और आलस्य से पीड़ित होकर नष्ट हो जाती।

जब कोई विघ्न सन्मुख उपस्थित हो तो मनुष्य को हर्ष करना चाहिये, क्योंकि विघ्न और कठिनता के समुपस्थित होने का अर्थ यह है कि मनुष्य मूर्खता और उदासीनता की किसी विशेष श्रेणी तक पहुँच गया है और अब उसको उन रुकावटों से अपने आपको पृथक करने के हेतु और सुमार्ग ढूँढ़ने के लिये अपने विशेष पौरुष और बुद्धि को प्रयोजित करना पड़ेगा। ऐसा समझना चाहिये कि मानों अब उसकी आभ्यन्तरिक शक्तियाँ अधिकतर स्वतंत्रता, अभ्यास और अवसर के लिये पुकारने लगी हैं।

कोई भी स्थिति स्वयं कोई कठिनता नहीं है। उस स्थिति के आन्तरिक मर्मों के समझने की और उसके साथ जो व्यवहार किया जाता है उसके समझने की न्यनूनता का नाम कठिनता, विघ्न, प्रतिघात या संकट है। इसलिये कठिनता से असंख्य लाभ होते हैं।

कठिनताएँ स्वेच्छित और अकस्मात् उत्पन्न नहीं होती हैं, उनके उत्पन्न होने के कारण होते हैं। मानव-शरीर की जैसे-जैसे आवश्यकताएँ बढ़ती हैं वैसे-वैसे विस्तरण या विकास के सिद्धान्त के अनुसार कठिनताएँ समुपस्थित होती हैं। बस, इसी में उनका आनन्द है।

आचरण के ऐसे भी मार्ग हैं जो अवश्यमेव मनुष्य को विघ्नों और उलझनों में फँसाते हैं और ऐसे भी हैं जो इनसे मुक्त कराते हैं। मनुष्य अपने आपको चारों ओर से चाहे जितना दृढ़ क्यों न जकड़ ले वह स्वयं उस बंधन से मुक्त हो सकता है। मनुष्य अज्ञान के कारण चाहे जैसे दुःखों के दलदल में और उलझनों के चाहे जैसे मार्गशून्य जंगल में भटकता हुआ चला जाय वह अपना सत्य मार्ग ढूँढ़कर, आनन्द और विवेकयुक्त कार्यरूपी उज्ज्वल नगर को जानेवाले सीधे और कंटकरहित पथ पर वापस आ सकता है। परन्तु हाथ पैर फैलाकर बैठ रहने, हताश होकर रोने चिल्लाने, खेद करने और झींकने से वह ऐसा कदापि नहीं कर सकता। उसकी द्विधा केवल सचेतता, न्यायसंयुक्त चिन्तना और शान्त परीक्षा से मिट सकती है। उसकी पतित स्थिति को इस बात की आवश्यकता है कि वह अपने आप पर अधिकार जमावे, अपने उचित स्थान पर वापस आने के हेतु विचार करे, खोज करे और अनन्त तथा क्रमबद्ध परिश्रम के साथ कार्य करे। निरे सोच और विचार से तो उस कठिनता के परिमाण के धुँधलेपन को और भी बढ़ाना है। परन्तु यदि वह धैर्य के साथ अपने आपसे पूछेगा और जिस पेंचदार मार्ग पर चलने से उसको यह दशा

प्राप्त हुई है उसको विचारेगा तो उसे ज्ञात हो जायगा कि उसने कहाँ कहाँ भूल की और कहाँ कहाँ राह बदलने में चूका। इस प्रकार सोचने से वह यह भी जान जायगा कि यदि वह तनिक सी अधिक विचारशीलता, बुद्धि, मितव्ययता या स्वार्थशून्यता से काम करता तो वह इस कठिनता और क्लेश को प्राप्त ही नहीं होता। वह भलीभाँति देख सकेगा कि किस प्रकार धीरे-धीरे उसने अपने आपको उलझनों में डाला और यदि वह अधिकतर ज्ञान और विवेक से चलता तो किसी और ही सन्मार्ग में प्रविष्ट होता। इस प्रकार चलकर यदि वह अपने व्यतीत चरित्र से सुवर्णविवेक के अनुभवरूपी बहुमूल्य कणों को बटोरे तो उसके संकटों का आकार बहुत कुछ घट जायगा। फिर वह अपने उद्वेगशून्य विचार के तीव्र प्रकाश को उन संकटों की परीक्षा करने, उनको सम्पूर्ण समझने और उनके और अपने अन्दर की कार्यबुद्धि के जो पारस्परिक सम्बन्ध है उसको जानने के लिये लगा देगा। ऐसा करने से संकट दूर होकर सीधा मार्ग दृष्टिगत हो जायगा और वह मनुष्य सदैव के लिये एक अच्छी शिक्षा का पाठ पा लेगा। इसके सिवाय उसको विवेक का कुछ ऐसा अंश और आनन्द का कुछ ऐसा परिमाण प्राप्त हो जायगा जो उससे कभी पृथक् नहीं हो सकेगा। जैसे अज्ञान, स्वार्थता, मूर्खता और अन्धेपन के जो मार्ग हैं वे घबराहट और झंझट में समाप्त होते हैं, उसी प्रकार ज्ञान, आत्मत्याग और विवेक के भी मार्ग हैं जो सुप्रसन्नता और शांति में परिणत होते हैं। जो इस सिद्धान्त को जानता है वह कठिनताओं का सामना साहस के साथ करेगा और उनको दमन कर दोष में से गुण, दुःखों में से सुख और गड़बड़ में शांति प्राप्त करेगा।

ऐसी कोई कठिनता नहीं है कि मनुष्य जिसका शक्ति के साथ सामना करके उसको न जीत सके। घबराहट निरर्थक ही नहीं है बल्कि मूर्खता भी है, क्योंकि वह कार्य करने की शक्ति और विवेक को हर लेती है। यदि यथोचित उपाय किया जाय तो प्रत्येक संकट दूर हो सकता है, इसलिये उसकी चिंता नहीं करनी चाहिये। जो कार्य पार नहीं पड़ता वह कठिन नहीं है किन्तु असम्भव है और फिर उसके लिये चिंता करना बिल्कुल व्यर्थ है। क्योंकि असम्भवता को जीतने का तो केवल यही उपाय है कि उसके अगाड़ी हार मान ली जावे। जैसे गैहिक, सामाजिक और आर्थिक संकट अज्ञान से उत्पन्न होते हैं और उनके दमन करने से व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है, वैसे ही धर्मविषयक संकट सन्धिग्धता, मानसिक व्याकुलता और हृदय में अन्धेरा उत्पन्न करनेवाली छाया से उत्पन्न होते हैं और उनके दूर होने से आध्यात्मिक और धर्म-सम्बन्धी ज्ञान का प्रकाश और भी अधिक फैलता है।

जिस दिन मनुष्य के मन में मनुष्य-जीवन के अद्भुत गूढ़त्व को जानने के लिये घबराहट और उखाड़पछाड़ उत्पन्न होने लगती है वह दिन उसके लिये बहुत महत्व का होता है, यद्यपि उस दिन की महत्ता उसको उस समय ज्ञात नहीं हो सकती। ऐसा होने से यह तात्पर्य है कि उसका उदासीनता, पाशविक आलस्य और स्थूल सुख का सम्वत् समाप्त हो गया है और उस दिन से वह उन्नतशील और जिज्ञासु बनने लगा है। अब वह निरा मानुषी पशु नहीं रहा है बल्कि जीवन के प्रश्नों को हल करने के लिये अपने समस्त मानसिक बल के द्वारा उद्यत हुआ है और उन संकट और उलझनों की-जो सत्य के पहरेदार हैं और जो

बुद्धिमन्दिर के द्वार पर खड़े हैं–खोज करता है।

"बुद्धिमान मनुष्य वही है जो संकट उपस्थित होने पर न उनसे मुँह छिपाता है और न घबराता है, बल्कि शांति के साथ स्थिर रहता है।"

अब से स्वार्थयुक्त विश्राम और असावधान अज्ञान का आस्वादन नहीं करता, इन्द्रियों के तुच्छ सुख का संभोग नहीं करता और अपने हृदय के धुँधले और अपरिभाषित प्रश्नों का समाधान करने से मुँह नहीं छिपाता। अब उसके अन्दर का स्वर्गीय अंश जग उठा है, मानों एक सोता हुआ देवता रात्रि के असंगत स्वप्नों से सचेत हो रहा है और प्रतिज्ञा करता है कि अब मैं उस समय तक नहीं सोऊँगा जब तक मेरी आँखें सत्य के उज्ज्वल दिन को देख लेंगी। वह अपने मन में उठे हुए उच्चतर उद्देश्यों और वीर कार्यों को करने की अपनी हृदय की पुकार को अधिक समय तक बैठा नहीं सुन सकता। ऐसा करना उस मनुष्य के लिये असम्भव है, क्योंकि उसकी जाग्रत मानसिक शक्तियाँ कठिन उलझनों को सुलझाने के लिये बारम्बार उसको प्रेरित करती हैं। उसको सत्य और विवेक के अतिरिक्त पाप और दोष में शान्ति नहीं मिल सकती। उस अज्ञान को जानकर जिससे उसके सन्देह और उलझन उत्पन्न हुए हैं और उस अज्ञान से अपने आपको न छिपाकर उसको दूर करने के हेतु जब वह अनन्त श्रम करता है और दिन प्रतिदिन उस प्रकाश के मार्ग को जो उसके सन्देह के अन्धकार को हटा सकेगा और उसके महत्प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा, लगातार ढूंढ़ता है, उस दिन उस मनुष्य का आनन्द बहुत ही विशाल हो जाता है। जैसे किसी कठिन पाठ को तैयार करके बच्चा हर्षित होता है, उसी प्रकार किसी सांसारिक आपत्ति को पार करने पर मनुष्य का हृदय हलका और शांत हो जाता है। जब मनुष्य किसी मार्मिक और अनन्त प्रश्न को जिस पर वह बहुत समय से विचार कर रहा है अन्त में हल कर लेता है और उसके अन्धकार को दूर कर देता है तब उसका हृदय और भी अधिक हर्षित और शान्त हो जाता है।

तुम अपने संकटों और प्रतिघातों को अशुभ मत समझो। ऐसा समझने से वे सचमुच, अशुभ और हानिकारक हो जावेंगे। तुम उनको शुभफलदायक ही समझो और वास्तव में वे शुभ फलदायक हैं। तुम उनको टाल नहीं सकते हो, इसलिये उनसे मुँह फेर कर मत भागो। जहाँ तुम जावोगे वहीं वे तुम्हारे आगे खड़े मिलेंगे। इसलिये उनका शांति और वीरता से सामना करो। उनके गुरुत्व और विस्तार को तौलो। उनको पृथक्-पृथक् विभक्त करके जाँचो, उनके अंगों को पकड़ो और उनकी शक्ति को नापो। इस प्रकार उनको समझ कर उन पर आक्रमण करो और विजयी होओ। इस प्रकार तुम आनन्द की उस पगडंडी को पावोगे जो साधारण दृष्टि से दिखाई नहीं देती। ❁❁❁

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2014 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2015 के वार्षिक शुल्क सहित शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होती रहे। **–व्यवस्थापक**

'जो पढ़ो उसे हजम कर जाओ'

लेखकः–किशोरीलाल गुप्त

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्।।

बाल–बालिकाओ! तुमने यह कहावत सुनी होगी–'बिनु गुरु–कृपा न मिलिहहि ज्ञाना'। बीसवीं शताब्दी के नवीन बाबू गुरु–फुरु–कृपा पर विश्वास नहीं रखते न आधुनिक समय के गुरु ही अपने धर्म–पुत्रों से स्नेह रखते हैं। ग्रामोफोन की तरह जो 'रिकार्ड' (मजमून) सुनाना हुआ चालीस पैंतालीस मिनट में ज्यों त्यों 'रिकार्ड' का गीत उगल कर चलते बनते हैं। हा! गुरु क्या? हम भाड़े के टट्टू बन गये हैं। अपनी दर हमने आप खोदी है। कहाँ पर्वतों की दुर्गम गुफाओं में, कन्दराओं में, तपोवनों में हमारी खोज करते हुए विद्या–पिपासु पहुँचते थे वहाँ आज हम दो–दो रुपये पर घर–घर विद्या का क्रय–विक्रय करने पर उतर पड़े हैं। फिर क्या आश्चर्य यदि समाज में हमारा उसका शतांश भी आदर नहीं जो पहले था।

हम (देवेन मनसा सह) देव–मन से, दिव्य चमकते मन से, प्रफुल्ल मन से, सौम्यभाव लेकर कक्षा में पढ़ाने नहीं आते। हमारी पाठन–विधि ऐसी नहीं जिस में विद्यार्थी निःरमण करने लगें; आनन्द लूटने लगें; जो हम पढ़ावैं उनके रोम–रोम में रमजाय। इसमें सोलह आना अध्यापक का ही कसूर नहीं। विद्यार्थियों का भी है। और उनसे अधिक उनके माता–पिता का भी है। उनका व्यवहार अपने हत्खंडों के साथ लख्ते जिगरों के साथ ऐसा ही है जैसा गाँव वाले अपनी गाय, भैंस और बछड़ों के साथ करते हैं। सुबह हुआ नहीं और उन्होंने अपने पशुओं के पैखरे खोले नहीं। बस, उनका कर्त्तव्य समाप्त हुआ। उन्हें पता नहीं ग्वाला क्या चुगाता है, कहाँ चुगाता है, चुगाता भी है या नहीं। ग्वाले का राम भावै किसी प्याऊ पर पानी पिलावै या सड़ी पोखर में, अथवा प्यासे ही घर को घेर लावै। उसकी बल से, चाहे पशु मरो, चाहे जिओ जब पशुओं में मरी पड़ती है तब बिलबिलाते हैं, जन्तर मन्तर तन्तर कराने की सूझती है।

ठीक यही दशा विद्यार्थियों के गार्जियनों की है। सबेरे दस बजे बच्चों को खोल दिया और शाम को घर के दर्वे में बन्द कर दिया। यह खबर नहीं लेते क्या पढ़ते हैं, क्या लिखते हैं; क्या करते हैं; किस–2 गली में गड्ढे में गिरते फिरते हैं; किसकी सुहवत में अपना सर्वस्व नष्ट कर रहे हैं; क्या–2 अलाय बलाय सलाय दोनों में चाटते फिरते हैं। जब हाजमा बिगड़ता है, चेहरे की कान्ति क्षीण पड़ जाती है; आँखें चुँधी होने लगती हैं, कमर झुककर कमान बनती नजर आती है दिमाग में चक्कर आने लगते हैं; एक–2 क्लास में तीन–2 साल फेल होते हैं, तब कहीं आँखें खुलती हैं। किन्तु अब क्या? जब चिड़ियाँ खेत चुग चुकीं।

कोई समय था जब माता-पिता और आचार्य बच्चों के प्रति, देश के नवकुसुमित -कलिकाओं के प्रति 'स्वे स्वे' कर्मणि अभिरत' रहते थे; उनके प्रति कर्त्तव्य पालन करना अपना धर्म समझते थे। माता-पिता गुरु-भक्ति करना, और आचार्य पित्र-भक्ति बनने का उपदेश किया करते थे। वेदों की कल्याणी शिक्षा "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान पुरुषो वेद" पर अमल करते थे। तभी देश के आर्य-कुमार राम की भाँति 'वृषभ कन्ध केहरि ठवनि' वाले होते थे।

प्रस्तुत वेद-मंत्र मानो किसी ऋषि-कुमार के मुखसे कहलवा रहा है-

अन्वय:- हे वाचस्पते! देवेन मनसा सह पुन: एहि। हे वसोष्पते ! नि-रमय, मयि श्रुतम् मयि एव अस्तु॥

शब्दार्थ- (हे वाचस्पते) हे विद्यान् आचार्य! गुरुवर्य! (देवेन मनसा सह) दिव्य मन के साथ, स्नेहयुक्त मन के साथ (पुन:) बार-2 (एहि) आइये, तशरीफ लाइये। हे (वसोष्पते) ज्ञान-धन, विज्ञान-धन के स्वामी, (नि-रमय) अपनी ज्ञान-वर्षा से, शिक्षा-सुधा के आस्वादन से हमें आनन्दित कीजिये, तृप्त कीजिये, जिससे (मयि श्रुतम्) मैंने अपने अन्दर जो सुना है, धारण किया है वह मेरा पढ़ा हुआ विषय, (मयि एव) मेरे अन्दर ही (अस्तु) होवे, रहे; पंक्चर हो जाने पर फुटबॉल की हवा की भाँति रात का पढ़ा हुआ सुबह को सफाचट न हो जाय।

व्याख्या:- इस मंत्र के बहुत से शब्दों को व्याख्या इस मंत्र की भूमिका और पिछले मंत्र की व्याख्या में पढ़ चुके हो। केवल एक शब्द (वसोष्पते) विशेष व्याख्या चाहता है। यह शब्द 'वस' धातु से बना है। इसका अर्थ है 'छिपना', 'ढकना', 'रहना'। इसी से 'वसन' 'वस्त्र' शब्द बने जिनका अर्थ है शरीर-ढकने के कपड़े। 'वसती' बसने का स्थान, ग्राम, भी इसी से बना है। 'वसु' जिसके मानी 'धन' के हैं इसी 'वस' धातु-रूपी बेल का तोमड़ा है चूँकि जिन वस्तुओं को ढककर, छिपाकर, हिफाजत से रखते हैं वे सोना, चाँदी, रत्न आदि होते हैं। इसलिए 'वसु' शब्द का अर्थ हुआ बहुमूल्य रत्न। विद्या से बढ़कर कोई मूल्यवान वस्तु नहीं। इन अर्थों में वह भी 'वसु' हुई। जो इस वेशकीमत अनन्तकाल से चली आती हुई 'वेद-निधि' की रक्षा करते चले आ रहे हैं वे आचार्य सच्चे (वसोष्पति) हुए। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 15 का शेष-

स्वर्ग रचते हुये, सौ बरस तक जियें।
कर्म करते हुये सौ बरस तक जिये।

मिट जायें, सभी रोग, दुख शोक भी।
छोड़ जायें यहाँ ज्ञान-आलोक भी।
फिर न कोई कहे प्रभु उठालो हमें।
दीनता-दाह से, प्रभु छुड़ालो हमें।

"स्वस्थ" रहते हुये सौ बरस तक जिये।
कर्म-करते हुए सौ बरस तक जियें। ❁❁❁

यह भी जानिये

संकलनकर्त्ताः— रामेन्द्रकुमार आर्य

क्रमांक 1 से 25 तक पिछले अंकों में प्रकाशित हो चुका है।

(26) जिस धर्म को मनुष्य मात्र का अर्थात् सार्वभौमिक और साथ है। सार्वकालिक होना चाहिए वह कैलाश, मानसरोवर, केदारनाथ, बद्रीनाथ, तिरुपति, काबा, कर्बला, मक्का, बैथहेल्म, येरुशलम तथा वैटिकन सिटी आदि स्थानों राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसामसीह तथा मोहम्मद आदि महापुरुषों एवं रामायण, वाइबिल, कुर्आन तथा गुरुग्रन्थ साहब पुस्तकों में सिमट कर रह जाता है।

(27) धर्म से सुख, समृद्धि व आत्मिक बल मिलता है धर्म आचरण का विषय है न कि वाह्य दिखावे का दस प्रकार के व्यक्ति धर्म को नहीं जान सकते शराबी, विषयी, पागल, थका, क्रोधी, मूर्ख, जल्दबाज, लोभी, भयभीत व कामी।

(28) हिन्दुओं में कथाकार पं0 जब कथा आरम्भ करते हैं तो कहते हैं कि कथा आरम्भ होती है सुनहु वीर हनुमान। आय के आसन लीजिए सिया सहित भगवान॥ फिर जब कथा समाप्त हो जाती है तो कहते हैं कि "कथा विर्सजन होत है सुनहु वीर हनुमान। आसन सहित जाइये सिया सहित भगवान॥ अब विचार करो कि ये वीर हनुमान की कैसी खिल्ली उड़ाते हैं पहले आपको कोई बुलावे फिर कार्यक्रम सम्पन्न हो जाय फिर आपसे कहे कि अपना आसन लो और अपने घर जाओ तो वह व्यक्ति नाराज हो जायेगा भले जाना चाहता हो और पुनः आयेगा नहीं यदि अतिथि जा भी रहा हो तो हमारा नैतिक दायित्व बनता है कि हम कहें कि श्रीमान जी और रूक लो भले अतिथि न रूके।

(29) कथाकार पं0 जब कथा आरम्भ करते हैं तो सम्बोधन में कहते हैं कि आदरणीय माताओं, बहनों व भाइयों कथा में सबका स्वागत है कथा के समापन पर ये लोग महिलाओं से अपने चरण स्पर्श करवाते जबकि हम माताओं, बहनों के चरण स्पर्श करें अतः माताओं, बहनों सावधान! तुम अपने पति व ससुर के अतिरिक्त किसी पर पुरुष के चरण स्पर्श न करो क्योंकि पुरुषों से तुम्हारा दर्जा ऊँचा है रामायण के रचयिता आदि कवि वाल्मीकि के कथनानुसार स्त्रियों का गुरु उनका पति ही होता है पति की सेवा से स्वर्ग अर्थात् सुख को प्राप्त करती हैं लेकिन मध्यकालीन तथा कथित कवियों व दार्शनिकों ने नारियों के प्रति मूर्खता के तथ्य प्रस्तुत किये तुलसी ने नारी को नीच, अधम, निर्दयी, ताड़ना योग्य, अशौच..... कबीर ने नारी को नागिनि, शंकराचार्य ने नरक का द्वार तथा विदेशियों में यूरीपडीस ने नारी को अभिशाप, अफलातून ने पशु, डेमास्थनीज ने सबसे बुरी, अरस्तू ने मूर्ख, कान्ताब ने पापिनि, आर्य विशप ने बिना आत्मा की, बाइबिल ने निर्जीव तैतूलियन व ईपराइन नारी के दर्शन को बुरा, सेक्सपियर ने कहा कि नारी के आंख से विषधर

सांप निकलता, राबेल ने कहा कि नारी ताड़ना से ठीक चलती, मिल्टन ने नारी को नीच,शोपेन –हार ने नारी को छोटी बुद्धि का तथा लूथर ने नारी को राक्षस कहा जबकि आर्यों ने नारी का सम्मान किया आधार राष्ट्र की हो नारी सुभग सदा ही। तथा वेद व्यास ने नारी को किरीटि (मुकुट) के समान बताया। जबकि नारियों में भावुकता हृदय प्रधान होती है पुरुष मस्तिष्क प्रधान होते हैं। प्रायः अनपढ़ महिलायें अपने पति का नाम नहीं लेती यह रूढ़िवाद है जबकि रामायण का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सीताजी ने राम का अनेकों बार नाम लिया।

(30) प्रायः राष्ट्रीय पर्वों पर विद्यालयों में बच्चे गाते हैं कि "दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल। साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल॥ इसके कैसेट भी बजाये जाते हैं यह एक फिल्मी कवि का कथन है जबकि वास्तविकता यह है कि "दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल। इतना झूँठा इतिहास में दूजा मिलता नहीं मिशाल॥ हजारों वीरों ने अपनी गर्दन कटवाई थीं। सच कहता हूँ तभी आजादी आई थी॥

देश को आजादी गांधी की अहिंसा वादी नीति से नहीं बल्कि अवध बिहारी, अमीरचन्द, अशफाक उल्लाखां, चन्द्रशेखर आजाद, ऊधमसिंह, अनन्त कन्हेरे, हेमू कालानी, आशुतोष कोइला, कुलाल कोंदर, दिनेश गुप्त, निर्मल जीवन घोष, बृजकिशोर चक्रवर्ती, दामोदर चापेकर, प्रमोद रंजन, चौधरी जगतसिंह, टिकेन्द्र जीत सिंह, ऊधमसिंह धींगरा, मदनलाल धींगरा, नरेन्द्रनाथ दास गुप्ता, मल्लयाधन सेट्टी, टी. पी. कुमारन नायर, सोहनलाल पाठक, विष्णु गणेश पिंगले, वसुदेव फड़के, खुदीराम बोस, सुभाषचन्द बोस, भगतसिंह, असित भट्टाचार्य, प्रदोत्त भट्टाचार्य, भवानी भट्टाचार्य, दिनेश मजूमदार, मतिलाल, मल्लिक शंकर माहले, अनन्तहरि मित्र, राजनारायण मिश्र, कालिपद मुखर्जी, चितरंजन मुखर्जी, नरेन्द्रमोहन मुखर्जी, यतीन्द्रनाथ मुखर्जी, सुनीलकुमार मुखर्जी, रतनसिंह, शिवराम, राजगुरु, महादेव रानाडे, लहनासिंह, लाला लाजपतराय, राजेन्द्र लाहिरी, सुशीलचन्द्र लाहिरी, सत्येन्द्रचन्द्र वर्धन, सत्येन्द्र नाथ वसु, श्रीकृष्ण शारदा, जगन्नाथ शिन्दे, कर्त्तारसिंह सराभा, गोपीनाथ शाह, सुखदेव, सूर्यसेन, हरनामसिंह, हरिकिशन, पं. रामप्रसाद बिस्मिल व भाई परमानन्द आदि क्रान्तिकारियों, बलिदानियों के बलिदान के कारण प्राप्त हो सकी।

(31) महात्मा गांधी के पास तीन बन्दर थे एक बन्दर अपनी दोनों आंखें बन्द रखता था यानि बुरा मत देखो, दूसरा बन्दर अपने दोनों कानों को बन्द रखता था यानि बुरा मत सुनो, तीसरा बन्दर अपना मुँह बन्द रखता था यानि बुरा मत कहो चौथा बन्दर भी होना चाहिए था कि बुरा मत करो, जितना बुरा देखना, सुनना व कहना खराब होता है उससे ज्यादा बुरा करना खराब होता है तथा रेडियो पर कभी–2 प्रचार आता है कि दुनियाँ से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता जबकि गांधी जी अपने लेख अंग्रेजी भाषा में लिखते थे My Experiment With Truth के लेखक गांधी है तथा यंग इन्डिया के सम्पादक गांधी थे गांधी जी के कथनानुसार सत्य और अहिंसा मेरे ईश्वर हैं बोले गांधी जी झूँठ। और गांधी जी ने कहा था कि पाकिस्तान मेरी लाश

पर बनेगा और गांधी जी जीवन काल में ही पाकिस्तान बन गया।

(32) व्यक्ति का नाम श्रेष्ठ सन्तान, श्रेष्ठ शिष्य या श्रेष्ठ कर्मों से अमर होता है दण्डी स्वामी विरजानन्द, महर्षि दयानन्द इसके देदीप्यमान उदाहरण है।

(33) यतिवर महावीर हनुमान, भीष्म पितामह, विरजानन्द, दयानन्द, अल्फ्रेड नोबेल, आचार्य विनोवा भावे, बागभट्ट, अटलबिहारी बाजपेई, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम व बाबा रामदेव आजीवन ब्रह्मचारी रहे।

(34) विश्व के 7 आश्चर्यों में ताजमहल का प्राचीन नाम तेजोमहल था जिसे राजा जयसिंह ने सन् 1600 ई. में बनवाया था। 400 करोड़ रु. से निर्मित इस स्मारक को बनने में लगा समय 22 वर्ष 20 हजार शिल्पी उस समय सोना 15/– तोला था तथा तोले का वजन 11.66 ग्राम था (ताजमहल मुमताज की कब्र नहीं अमर उजाला 24.08.2007)

(35) भारत में मनाये जाने वाले पर्व होली, दीपावली की पुराणों के अनुसार उत्पत्ति मध्यकालीन है जबकि वास्तविकता यह नहीं है ये पर्व सृष्टि के समकालीन हैं इनका वैज्ञानिक आधार है मध्यकालीन इतिहास कारों ने ऐसी इनमें कथाएं जोड़ दी जिससे इन पर्वों का कलेवर खराब हुआ दीपावली जैसे पर्वों पर जूआ जैसे गन्दे खेल प्रचलित हुए। होली, दीपावली व अन्य पर्वों पर वैज्ञानिक आधार जानने हेतु डॉ. भवानीप्रसाद भारतीय द्वारा लिखित आर्य पर्व पद्धति का अवलोकन करें।

(36) दीपावली व अन्य अवसरों पर दिल्ली के मन्दिरों में इतनी मिठाई चढ़ती है कि मिठाइयों के बहुत बड़े ढेर लग जाते हैं दूसरी तरफ गरीब परिवार मिठाई के एक–2 कण को तरसते हैं इस चढ़ावे की मिठाई को पुजारियों के परिवार खाकर समाप्त नहीं कर पाते फलतः यह मिठाई कुत्तों के लिए फेंकी जाती है अतः मूर्तियों पर द्रव्य चढ़ाना पाप व अधर्म है अन्न भूखों के लिये है औषधि रोगी के लिए है समुद्र में वर्षा करना बेकार है।

(37) देशवासियों में अपने को पिछड़ा व गरीब सिद्ध करने की होड़ लगी है देश में फूट बढ़ी है द्वेष बढ़ा है, गुणवत्ता व कार्य कुशलता घटी है, राष्ट्र कमजोर हुआ है, पशु व वृक्ष घटे हैं, जनसंख्या बढ़ी है वातावरण दूषित हुआ है।

(38) अर्थ हर व्यक्ति व हर राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी है आर्थिक रूप से सम्पन्न हुए बिना कोई भी व्यक्ति या राष्ट्र ससक्त समृद्ध और नहीं हो सकता निर्धनता एक बड़ा अभिशाप है उसे दूर न करना महाअभिशाप है। भ्रष्टाचार मूलक कोटा/परमिट/लाइसेंस/चुंगी व छूट वाली व्यवस्थाऐं समाप्त हों, कोई भी परिश्रमी व्यक्ति गरीब न रहे जनता निर्धन व शासक धनवान बन रहे खुशहाली भ्रष्ट बदमाशों, भ्रष्ट अधिकारियों, भ्रष्ट नेताओं के घर है नेता, अधिकारी, कर्मचारी, जनता के सेवक हैं। मालिक नहीं, आर्थिक गुलामी से राजनैतिक गुलामी आती है।

(39) देश में मजहब के आधार पर बने कानून जैसे तलवार रखने का अधिकार शिक्षण संस्थाऐं खोलकर चलाने का अधिकार, विवाह व तलाक सम्बन्धी कानून सभी नागरिकों हेतु समता,

राष्ट्रीयता, सत्य न्याय और मानवता के आधार पर बनाये जायँ। सम्प्रदायों के आधार पर बने कानून एकता के स्थान पर अनेकता, न्याय के स्थान पर अन्याय, समता के स्थान पर विषमता और प्रेम के स्थान पर विद्वेष फैलाते हैं राष्ट्र में साम्प्रदायिकता न फैले इसके लिए मजहब सबके लिए निजी और व्यक्तिगत विषय रहे। इतिहास साक्षी है कि साम्प्रदायिक दंगों में जन धन की बहुत बड़ी हानि हुई जिससे राष्ट्र कमजोर हुआ विश्व में सैकड़ों राष्ट्र ईसाइयों के तथा 70 राष्ट्र मुसलमानों कें लेकिन हिन्दुओं (आर्यों) के लिए एक भी राष्ट्र सुरक्षित नहीं। अपनी धरती पर हिन्दू तृतीय श्रेणी के नागरिक बनकर जीने को मजबूर हैं। शिक्षा में रैंगिंग जैसे अभद्र अशिष्ट कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाया जाय संस्कार विहीन शिक्षा राष्ट्र को अन्धकार की ओर ले जाती है। सरकार द्वारा सर्व शिक्षा अभियान के चित्र में एक कन्या व एक बालक को पेन्सिल पर बैठा हुआ दिखाया गया है जबकि पेन्सिल बैठने की वस्तु नहीं पेन्सिल से बच्चों द्वारा अभ्यास पुस्तिका पर लिखते हुए दिखना चाहिए।

(40) एक राष्ट्र में एक कानून शिक्षा सबको राष्ट्र भाषा में दी जानी चाहिए भारत में अब भी लगभग 30 प्रतिशत अनपढ़ हैं। जो 70 प्रतिशत पढ़े हैं उनमें 50 प्रतिशत हाईस्कूल फेल हैं इनमें लोगों को अशिक्षित रखकर उन्हें विकास के अवसरों से वंचित रखना घोर अन्याय है आज भारत में एक स्नातक (आई. ए. एस.) को सरकार एक जनपद का मालिक बना देती है लेकिन आज भी स्नातक पर्याप्त अन्धविश्वास में डूबे पाये जाते हैं अतः सरकार को चाहिए कि स्नातक पाठ्यक्रम में सत्यार्थ प्रकाश रखे जिससे राष्ट्र की रीढ़ युवा पथ भ्रष्ट होने से बचे सरकार मुर्गी पालन, मछली पालन, व बकरी पालन को बढ़ावा देकर अभक्ष्या भक्ष्य का भक्षण कराके राष्ट्र को अंधेरे में करती है।

(41) शाकाहार अपनाने में मनुष्यों, पशुओं और वातावरण को लाभ होता है शाकाहार भोजन ही बुद्धि और मानवता के अनुकूल है मांसाहार का प्रचार विदेशी शिक्षा से भारत में हुआ। प्रसिद्ध हस्तियां जैसे अमिताभ बच्चन, रेखा, मेनका, मदर टेरेसा, भाग्यश्री, अनुपम खेर, हेमा-मालिनी, पाइथागोरस, प्लेटो, थामसन, एडिसन, एल्वर्ट, आइन्सटीन, टालस्टाय, मार्टिन लूथर किंग, जार्ज बर्नाड शाह (नोवेल पुरस्कार त्यागी) कपिलदेव, राजीव दीक्षित, नरसिंहराव, अटलबिहारी बाजपेई, महर्षि दयानन्द, बाबा रामदेव, नरेन्द्र मोदी, शाकाहारी थे/ हैं। दयानन्द, कबीर व नानक ने मांसाहार का विरोध किया निर्दोष को मारना पाप तथा अपराधी को छूट देना भी पाप है।

(42) फूल जब तक पेड़ पर लगा रहता है तब तक सुगन्ध देता रहता है जब सूखकर गिर जाता है तब भी दुर्गन्ध नहीं देता। बनारस उ0 प्र0 में लगभग 50 कुन्टल फूल प्रतिदिन पूजा अर्चना में लगाये जाते हैं फूल और पैसों से लोग गंगा की आरती उतारते जिससे वायु और जल प्रदूषण होता है 60 प्रतिशत पेट के रोग दूषित जल के सेवन से होते हैं बाढ़ आने पर वही गंगा उनके खेतों व गांवों को बहा ले जाती जबकि गंगा से नहरें निकालो और बिजली पैदा करो यही गंगा की कृपा होगी।

-(शेष अगले अंक में)

जीवन–संग्राम में विजय–प्राप्ति के कुछ उपाय

लेखकः स्वामी सोमानन्द महाराज

शारीरिक स्वास्थ्य

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"

मनुष्य का जीवन यथार्थ में एक प्रकार का संग्राम ही है। इस जीवन में प्रत्येक मनुष्य के सामने सुख और दुःख, भला और बुरा, सच और झूठ, हित और अनहित, जय और पराजय आदि द्वन्द्वरूपक भिन्न–भिन्न दो मार्ग खुले रहते हैं। इन मार्गों में से किसी एक को पसंद करना या नापसन्द करना और उसके अनुसार बर्ताव करना प्रत्येक मनुष्य की स्वतंत्र बुद्धि के अधीन है। कोई कोई तो इस मानव–जीवन को केवल दुःखमय और कंटकपूर्ण कहते हैं और सदा उसकी निन्दा ही किया करते हैं। परन्तु तत्त्वज्ञों की दृष्टि से यह संसार, अर्थात् हमारा मानवी जीवन, सुखमय बनाया जा सकता है। यही सोचकर काव्यक्षेत्र के नूतन मार्गदर्शक कवि पण्डित श्रीधर पाठक अपने "जगत–सचाई–सार" में कहते हैं–

"कहो न प्यार मुझसे ऐसा झूठा है यह सब संसार।
थोथा झगड़ा, जी का रगड़ा, केवल दुख का हेतु अपार।।"

वास्तव में यह संसार, अथवा हमारा जीवन, न तो केवल दुःखपूर्ण है और न केवल सुखपूर्ण। हेल्प्स साहब अपने निबन्धों में लिखते हैं– सच है, यह जीवन सुख और दुःख का मिश्रण है। और, अनुभव से भी यही बात सिद्ध होती है कि इसको दुःखी बनाना अथवा सुखी बनाना हमारे हाथ में है। बालपोल के मत के अनुसार यह जीवन उन लोगों के लिए सुखमय है जो सोच–विचार किया करते हैं; परन्तु जो लोग केवल अपनी इन्द्रियों के विकारों के अधीन हैं उनके लिए यह जीवन सचमुच दुःखपूर्ण है। तात्पर्य यह है कि हम अपने जीवन को जैसा बनाना चाहें वैसा बना सकते हैं–

अब प्रश्न यह है कि हम अपने जीवन को सुखपूर्ण कैसे बनावें? इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो जान बूझ कर दुःख की चाह करे। प्रत्येक व्यक्ति की यही इच्छा बनी रहती है कि मुझे सुख, शान्ति और जय प्राप्त हो। परन्तु इसका क्या कारण है कि, इच्छा न रहने पर भी, अन्त में हम को दुःख और पराजय ही मिलता है? कारण यही है कि हम उन उपायों को नहीं जानते (और यदि जानते भी हैं तो उनका यथार्थ उपयोग नहीं कर सकते) जिनकी सहायता से हम इस जीवन–संग्राम में दुःख को टाल सकें और सुख की प्राप्ति कर सकें। प्यारे विद्यार्थियो! तुम लोग पाठशालाओं में ऐसी शिक्षा पाने के लिए पढ़ रहे हो जिसकी सहायता से तुम अपने जीवन–संग्राम में सुख और विजय की प्राप्ति कर सके। ऐसी अवस्था में तुम्हारे लिए यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है, कि जीवन की सफलता की कुंजी क्या है? यह बात तुम्हारे ही लिए आवश्यक नहीं है; किन्तु उन सब लोगों के लिए भी है जो इस संसार में जन्म लेकर

अपने जीवन की सार्थकता करना चाहते हैं। अतएव इस लेखमाला में हमने ऐसी बातों की चर्चा करने का निश्चय किया है जिनके जान लेने से हम लोग अपना जीवन सुख और शांति से व्यतीत कर सकें। इस लेखमाला का पहला पुष्प 'शारीरिक स्वास्थ्य'' है।

क्या आपने कभी विचार किया है कि आपको यह सारयुक्त संसार नित्य सारहीन और दुःखमय क्यों दीख पड़ता है? क्या आपने कभी इस बात को सोचने की चिन्ता की है कि आपके नित्य निस्तेज और आलसी दीखने का क्या कारण हो सकता है? और, क्या आपने कभी यह सोचना अपना धर्म समझा है कि इस समय अधिकांश भारतवासियों की कर्तव्य-शक्ति दिनों दिन क्यों घटती चली जा रही है? कदाचित् आप इन प्रश्नों को महत्वपूर्ण न समझते होंगे और यह कहेंगे कि हमें तो इस समय अपने स्कूल, कालेज, आफिस, व्यापार, व्यवसाय और रोजगार का ही काम बहुत है, फुरसत बिल्कुल नहीं है जो इन बातों पर ध्यान दें। परन्तु स्मरण रखिए, यदि आप इन प्रश्नों की ओर उचित ध्यान न देंगे तो अन्त में आपकी हानि होगी, क्योंकि इन विषयों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष आपके जीवन के साथ लगा हुआ है। इन विषयों पर सोचने के लिए आपको फुरसत निकालनी ही चाहिए।

हमारे सनातन धर्म के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को मानव-जीवन का ध्येय माना है। यदि आप भी इसको मानते हों तो सोचिए कि इन चारों पदार्थों की सिद्धि की जड़ क्या है? क्या आप नहीं कहेंगे कि आरोग्य अथवा शारीरिक स्वास्थ्य ही इन सब बातों की नींव है? जिसने इस विषय में ध्यान नहीं दिया उसने मानो अपने जीवन के उद्देश्य के साधनों में से एक प्रधान अंग को ही तोड़ डाला! स्वास्थ्य के महत्त्व के विषय में **''धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्य मूलकारणम्'' ''तन्दुरुस्ती हजार नियामत''** इत्यादि लोकोक्तियाँ जगत्प्रसिद्ध हैं। इसकी प्रशंसा ही में लेख को अधिक बढ़ाना उचित न होगा। सेन्टपाल का कथन है- सच है, हमारा यह शरीर ईश्वर का निवास स्थान है। उसकी रक्षा करना, उसको निरोग रखना और बलवान् बनाना हमारा प्रथम धर्म है।

वर्तमान समय में इस विषय का महत्व और अधिक बढ़ गया है। प्राचीन समय में बहुतेरे लोग देहातों में रहते थे, खुले मैदानों की हवा पाते थे, खेती बारी के कामों में मेहनत किया करते थे और अपने शरीर को बलिष्ठ बनाये रखने की और विशेष ध्यान दिया करते थे। आजकल शहरों में रहने वालों की संख्या दिन दिन बढ़ती जाती है। यहाँ ऐसे मकानों, दुकानों और कारखानों में रहना पड़ता है कि जहाँ आरोग्यता का विघात सहज ही में हो जाता है। शहर निवासियों के दैनिक व्यवसाय भी ऐसे होते हैं जिनके कारण शरीर की अपेक्षा मस्तिष्क ही को अधिक मेहनत करनी पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि शहर में रहनेवालों में से अधिकांश जन सदा रोगग्रस्त बने रहते हैं। इसके अतिरिक्त, वर्तमान समय में हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाले कई दुर्व्यसन भी प्रचलित हो रहे हैं। इनका विस्तृत वर्णन करने के लिए यहाँ स्थान नहीं है, तथापि यह लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि तम्बाकू, मद्यपान आदि व्यसनों के कारण नई पीढ़ी के नवयुवकों में अनेक नये रोग दिखाई देने लगे हैं। पश्चिमी शिक्षा और स्वाधीनता की चकाचौंध से हम लोग इतने चौंधिया गये हैं कि इन्द्रियदमन जैसे सनातन तत्व को बिल्कुल भूल गये हैं। किसी कवि का वचन है-

"आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्।।"

अर्थात् इन्द्रियों के वश में रहने से ही विपत्ति आती है और उनको जीतने से, दमन करने से, सुख मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए ये दोनों मार्ग खुले हैं। जिस मार्ग से जाना चाहो, जा सकते हो। खेद की बात है कि हम अपने शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए इन्द्रियदमन की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। ऊपर जिन कारणों का उल्लेख किया गया है उनके पृथक् विवेचन की आवश्यकता नहीं है। सिर्फ मद्यपान के विषय में दो एक महात्माओं के वचन उद्धृत किये जाते हैं। यहूदियों में एक प्राचीन कहावत है "जहाँ शैतान स्वयं जा नहीं सकता वहाँ वह शराब को भेजता है। चौलिस नाम का ग्रन्थकार लिखता है–

जब एक बार यह राक्षस घुल पड़ता है तब अन्दर ही बना रहता है। इसके बाद वहाँ शान्ति, आशा और आनन्द का निवास कभी हो नहीं सकता। शेक्सपीयर के ग्रंथों में तो शराब की निन्दा में अनेक उत्तमोत्तम वचन पाये जाते हैं। उनमें से नमूने के लिए लीजिए–

कैसे आश्चर्य की बात है कि मनुष्य इस मदिरा रूपी शत्रु को अपने मुख में रखते हैं। यह उनके मस्तिष्क ही को हर लेता है और अन्त में उन्हें पशु के समान बना देता है।

अब हम कुछ उपायों का उल्लेख करते हैं जिनका अवलम्ब करना हमको अपने आरोग्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

सबसे पहला उपाय ब्रह्मचर्य है। प्यारे पाठको! क्या आपने भीष्म पितामह, महावीर हनुमान, भीमसेन, अर्जुन आदि का नाम नहीं सुना? क्या आप जानते हैं कि इन लोगों के अतुल सामर्थ्य का रहस्य क्या है? यह बात सिद्ध है कि ब्रह्मचर्य ही आरोग्य, बल और वीर्य का जन्मदाता है। ब्रह्मचर्य से वीर्य की रक्षा होती है और संसार में सुख के नाम से जो बात प्रसिद्ध हैं वे सब प्राप्त होती हैं। किसी महात्मा का वचन है "वीर्य शक्ति है, शक्ति जीवन और तरुणाई है, शक्ति की कमी बुढ़ापा है, और शक्ति का नाश ही मृत्यु है।" तात्पर्य यह है कि हम लोगों को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे हमारे ब्रह्मचर्य की हानि हो।

–(शेष अगले अंक में)

महापुरुषों की जयन्ती

दादाभाई नारोजी	4 सितम्बर
डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन	5 सितम्बर
भारतेन्दु हरिश्चन्द	9 सितम्बर
पं0 गोविन्दबल्लभ पंत	10 सितम्बर
आचार्य विनोवा भावे	11 सितम्बर
मैडम भिकाजी कामा	24 सितम्बर
पं0 दीनदयाल उपाध्याय	25 सितम्बर
शहीद भगतसिंह	28 सितम्बर

महापुरुषों की पुण्यतिथि

यतिन्द्रनाथ राय	13 सितम्बर
गुरु विरजानन्द दण्डी	14 सितम्बर
गुरु नानकदेव	27 सितम्बर
राजा राममोहनराय	27 सितम्बर

शिक्षक दिवस	*5 सितम्बर*
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	*5 सितम्बर*
हिन्दी दिवस	*14 सितम्बर*

परिश्रम

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

अर्थ– इस संसार में कर्म करते हुए तू सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर। हे मनुष्य! इस प्रकार और इसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है–तुझमें कर्म लिप्त नहीं होगें।

कर्म प्रधान विश्व कर राखा,
जो जस कीन सो तस फल चाखा।

मनुष्य संसार में परिश्रम करने के लिए उत्पन्न हुआ है, यह संसार कर्मक्षेत्र है, यहाँ पर कर्म करते रहने में ही जीवन है। कर्म का त्याग मृत्यु है। जीवन–संग्राम के लिए हमें पग–पग पर श्रम करने की आवश्यकता रहती है। दुकानदार अपनी दुकानदारी, ठेकेदार अपनी ठेकेदारी, विद्यार्थी अपनी दिनचर्या बिना परिश्रम के नहीं चला सकते। यही बात प्रत्येक व्यवसायी पर घटती है। सर्वत्र परिश्रम ही अपेक्षित है। जो व्यक्ति परिश्रम को छोड़ बैठता है वह आलसी और प्रमादी हो जाता है। उसकी उन्नति का मार्ग बन्द हो जाता है। शरीर की उन्नति के लिए व्यायाम के परिश्रम की निरन्तर आवश्यकता है। मन की उन्नति के लिए अध्ययन और अध्यापन का परिश्रम करना पड़ता है। समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए भी इसी प्रकार कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

सभ्यता के जितने चिन्ह आज हमको दिखाई देते हैं, वे सब परिश्रम के पसीने से ही प्राप्त हुए हैं। प्रकृति के रहस्यों को जानने के लिए तथा उसकी शक्तियों पर अधिकार जमाने के लिए वैज्ञानिकों को बड़े–बड़े उद्योग करने पड़े हैं। अग्नि, भाप, विद्युत आदि शक्तियों को काम में लाने के लिए जो–जो परिश्रम मनुष्यों ने किए हैं, वे सब इतिहास के पृष्ठों का मनोरंजक पाठ बन रहे हैं। रेल, तार, हवाई जहाज इत्यादि आविष्कार जिनके द्वारा मनुष्यों ने समय और स्थान की दूरी को दूर कर दिया है, वे सब परिश्रम का ही फल है। जिन व्यक्तियों ने तथा जिन जातियों ने परिश्रम के मार्ग का अवलम्बन छोड़ दिया है वे सब निश्चय से ही मृत–प्राय: हो गई हैं। अत: आओ हम परिश्रमी बनें और इसके स्वादु फल का आस्वादन करें।

परिश्रम के प्रकार– मनुष्य की आवश्यकताएं अनेक प्रकार की हैं, अत: उनकी पूर्ति के लिये भिन्न–भिन्न प्रकार का परिश्रम करना पड़ता है। कई लोगों को जंगलों में परिश्रम करना पड़ता है, कईयों को नगरों में। एक कृषक है, तो दूसरा मेमार। एक सुनार है, तो दूसरा लोहार। एक दर्जी है तो दूसरा दुकानदार। तात्पर्य यह है कि अनेक व्यवसायी मिलजुल कर ही मनुष्य को सुखी बना रहे हैं। जिनमें बाहुबल है वे शारीरिक

उद्योग कर रहे हैं। जिनमें मनोबल है वे मस्तिष्क के परिश्रम द्वारा समाज-सेवा कर रहे हैं। सारांश यह है कि जो जिस परिश्रम के योग्य है, उसी में दत्तचित्त होकर उसे व्यग्र होना चाहिए।

संसार में कोई कार्य अथवा व्यवसाय ऐसा नहीं, जो मनुष्य को गिराने वाला हो। मनुष्य उठता और गिरता अपने भावों से है। अमरीका का एक महापुरुष जीवन के प्रारम्भ में जूते गाँठ कर अपनी आजीविका पैदा करता है। उसका कथन है, कि जूते गाँठना बुरा नहीं, परन्तु जूतों को बुरी तरह गाँठना बुरा है। हमें यह कदापि न भूलना चाहिये कि सब प्रकार का परिश्रम उत्तम है यदि हम उत्तम भावों से प्रेरित होकर उसे करें। कोई कार्य घृणित नहीं, यदि कोई पदार्थ घृणित है, तो वह प्रमाद और आलस है। इनसे हमें सदैव बचना चाहिए।

परिश्रम के लाभ–

1. परिश्रम का सबसे बड़ा लाभ तो यही है कि इसके द्वारा हम अपनी आजीविका की सिद्धि करते हैं। जीवन निर्वाह के सब पदार्थ इसी उद्योग द्वारा उपलब्ध होते हैं। जो लोग परिश्रम से जी चुराते हैं वे भूखे मरते हैं वे दूसरों पर भार बनते हैं, और तिरस्कृत होते हैं।

2. परिश्रम द्वारा हमें स्वाधीनता प्राप्त होती है। हम दूसरों पर आश्रित होने से छूटते हैं। स्वयं अपनी जीवन-स्थिति बना कर स्वावलम्बन का आनन्द लेते हैं।

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं,
कर विचार देखो मन माहीं।

सर्वं परवशं दुःखम् सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतदेव समा-सेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।

3. परिश्रम द्वारा जहाँ हम स्वयं स्वतंत्र बनते हैं और अपनी सहायता करते हैं वहाँ हमें इसी के द्वारा दूसरों की सहायता का अवसर और सामर्थ्य प्राप्त हो सकता है। बच्चों के परिश्रम से उनके माता पिता के सुख की वृद्धि होती है। वैज्ञानिकों के परिश्रम से अनेकों का भला होता है। परिश्रम के साथ स्वार्थभाव को कदापि न जोड़ना चाहिए। हमारे परिश्रम से यदि दूसरों को लाभ नहीं पहुँचता तो वह हीन परिश्रम है और हमें मलिन बना देता है। हमें दूसरों के लिए जीना चाहिए क्योंकि ऐसे जीवन में ही सुख और आनन्द मिलता है।

मरना भला है उसका जो अपने लिए जिए।
जीता है वह जो मर चुका इन्सान के लिए।।

4. परिश्रम से हमारा शरीर बलिष्ठ बनता है और मानसिक शक्तियों का विकास होता है। आलसी मनुष्य का शरीर और मन रोगों का घर बन जाता है। वह सदैव दुःखी रहता है। दुःखों से पीड़ित होकर वह दूसरों के कष्ट का कारण बनता है।

5. परिश्रम हमारे जीवन में प्रयोजनात्मकता लाता है। क्योंकि इसके द्वारा हम अपनी निश्चित धुन की साधना करते हैं। प्रयोजन-शून्य जीवन निरर्थक होता है। उसकी स्थिति तिनके के समान डाँवाडोल रहती है। परिश्रम हमारी शक्तियों को एकत्रित करता है और उन्हें प्रयोजन की सिद्धि में लगाता है।

6. परिश्रम द्वारा हम अपने खाली समय को भी उपयोगी बना सकते हैं और अनेक कुकर्मों से बचते हैं जिनका खाली समय में विचार आता है। अपराधी मनुष्य अधिकांश अपराध में इसीलिये पड़ते हैं कि वे अपने सन्मुख कोई निश्चित परिश्रम नहीं देखते। दर दर भीख मांगने वाला भिखारी भी इसी मर्ज का मरीज होता है।

7. परिश्रम द्वारा दूसरों की दृष्टि में हम आदरणीय बनते हैं। परिश्रमी मनुष्य सर्वत्र प्रतिष्ठित समझा जाता है। विपरीत इसके आलसी सदा और सर्वत्र अपमानित होते हैं।

8. संसार के बड़े-बड़े पद और अधिकार केवल परिश्रमियों के ही भाग्य में आते हैं। आज जो हमें नेता और उच्च पदाधिकारी नजर आते हैं वे कल परिश्रम की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे और निरन्तर परिश्रम द्वारा ही उन्होंने अपनी वर्तमान प्रतिष्ठा की स्थापना की है।

बिन उद्यम के कामना, कभी न पूरण होत।
उद्यम जीना जानिए, आलस जानिये मौत।।

आलस्य के दुष्परिणाम– परिश्रम के लाभों का वर्णन करते हुए आलस्य के दुष्परिणाम अपने आप सूझने लग जाते हैं। तथापि बालकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि आज जो हमारे देश की दुर्गति हो रही है, उसका अधिकांश कारण भारतवासियों के आलस्य और परिश्रम का अभाव है। जब से हमारी जाति ने उद्योग से मुँह मोड़ा है, तभी से हमारी जाति भिखमंगों की जाति बन रही है। बावन लाख साधु जो दर-दर घूमकर अपने प्रमाद का प्रचार कर रहे हैं, यह आलस्य की मूर्तियाँ यदि प्रमाद छोड़ कर परिश्रम में लग जाएँ तो भारत में कितने बड़े सुधार की सिद्धि हस्तगत हो जाय। यदि यह भारत की रक्षार्थ अपने बलिष्ठ शरीरों को परिश्रम के अर्पण करें, तो देश का बड़ा भारी हितसाधन हो जाय। अतः हम सबके लिये यह परम आवश्यक है कि हम अपने देश से आलस्य को दूर भगावें। इसका सबसे बड़ा उपाय यह है कि हम स्वयं परिश्रमी बनें, दूसरों को परिश्रमी बनावें। अपने धन का व्यय इस प्रकार के दान में करना चाहिए जिससे दान पाने वाले उद्योगी और परिश्रमी बनें। यदि आप भिखमंगे को प्रतिदिन भीख देते रहते हैं तो उसको भिखारी बनाये रखने की जिम्मेवारी आप पर है। ऐसे दान का क्या फल जो दूसरों को भिखारी बनावे? यदि आप भिखारी के सन्मुख कार्य उपस्थित कर दें और उसको परिश्रम में लगा देवें तो उसका जीवन स्वावलम्बन का जीवन बन जायगा और उसके परिश्रम से दूसरों का भी लाभ होगा।

कर्ममय जीवन– गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने हमें कर्म करने की प्रबल प्रेरणा की है। वेद में स्वयं परमात्मा ने हमें कर्म के लिये बारम्बार उपदेश दिया है। वैदिक जीवन वस्तुतः कर्मयोग का जीवन है। हमारे जीवन को वेद भगवान चार भागों में विभक्त करते हैं।

1. ब्रह्मचर्याश्रम में हमें ऐसे कार्यों के करने का आदेश मिलता है, जिनसे हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास हो।

2. गृहस्थाश्रम में हमारे लिये वे कर्म आवश्यक बतलाये गये हैं जिनसे संसार की सुख वृद्धि हो।

3. वानप्रस्थाश्रम में हमारे लिए पुनः चिन्तन और संयम प्राप्त करने के लिये कर्मों का विधान किया गया है।

4. अन्तिम अथवा संन्याश्रम में विश्व के हित-साधन के लिए सार्वजनिक कर्मों के सम्पादन का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा धर्म हमें कर्ममय जीवन का उपदेश देता है। इस जीवन का तिरस्कार हमें कदापि न करना चाहिए।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

वैदिक सुभाषित

1. **आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्**
   आत्म-ज्ञान से बल पैदा होता है तथा विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

2. **बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः**
   अनेकों में मैं पहला बनूं या बीच का बनूं (निकृष्ट कदापि न होऊं)

3. **सरस्वती मन्युमन्तं जगाम**
   विद्या उत्साह-युक्त मनुष्य के पास जाती है।

4. **नानाश्रांताय श्रीरस्ति**
   जो पुरुषार्थ नहीं करता उसको धन नहीं मिलता।

5. **ओं क्रतो स्मर कृतं स्मर**
   हे प्रयत्नशील! परमेश्वर का स्मरण कर तथा अपने किये हुए कर्म का स्मरण कर।

6. **शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः**
   इस मनुष्य के सब पाप परिश्रम करने के कारण मार्ग में ही मिट जाते हैं।

7. **सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्**
   सूर्य की शोभा को देखो जो चलता हुआ कभी सुस्ती नहीं करता।

8. **पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा**
   आलसी मनुष्य ही पापी है। सचमुच प्रभु पुरुषार्थ करने वाले का मित्र होता है।

❊❊❊

मन और स्वभाव

लेखकः— दयाचन्द्र गोयलीय

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
पारब्रह्म को पाइये, मन ही के परतीत।।

उक्त दोहे में कवि ने क्या अच्छा कहा है। वास्तव में मनुष्य का मन ही सब कुछ है। जैसा मन होता है वैसा ही स्वभाव होता है। जैसा मनुष्य मन में विचार करता है, जैसी भावनायें उसके हृदय में उत्पन्न होती हैं, वैसा ही वह स्वयं हो जाता है। अमुक मनुष्य कैसा है, उसका चरित्र कैसा है, उसका स्वभाव मृदु है या कठोर है, वह सुखी है, या दुःखी है, इन सब बातों का पता उसके मन से और उसके विचारों से लग सकता है। मनुष्य चाहे तो अपने विचारों से स्वर्ग को नरक बना दे और चाहे तो नरक को स्वर्ग बना दे; दुःखों में रहता हुआ भी सुख का अनुभव करे और सुखों का भोग करता हुआ भी दुःखी रहे। सुख दुःख मन की अवस्थायें हैं। ये किसी वस्तु के होने या न होने पर निर्भर नहीं है। सम्भव है कि एक राजा धन सम्पदा और ऐश्वर्य को भोगता हुआ भी रात दिन चिंतारूपी चिता में जलता रहता हो और एक भिखारी जिसको भरपेट भोजन भी नहीं मिलता, सन्तोषरूपी अमृत का पान करता रहता हो। यह सब मन का प्रभाव है। जैसा मनुष्य विचारता है, तद्रूप होता है। विचार शक्ति बड़ी प्रबल होती है। जैसे विचार होते हैं वैसे ही कार्य होते हैं। कार्य विचार के अनुकूल होते हैं।

जिस प्रकार बीज से अंकुर उत्पन्न होते हैं और फिर से बढ़कर पेड़ का रूप धारण करते हैं उसी प्रकार मनुष्य का प्रत्येक कार्य उसके अंतरंग विचारों से उत्पन्न होता है। कोई काम भी बिना विचार के नहीं होता। प्रत्येक कार्य से पहले उस कार्य के करने का विचार होता है। विचार के बाद कार्य होता है। बहुत से कार्य ऐसे होते हैं कि जिनके करने का संकल्प नहीं किया जाता, वैसे ही वे हो जाते हैं, परन्तु वे भी विचारानुकूल ही होते हैं। उनके करने से पहले भी मन में कुछ न कुछ विचार उनके विषय में अवश्य उत्पन्न होते हैं। भावार्थ दुनिया में कोई ऐसा काम नहीं है जो विचारानुकूल न हो।

जिस प्रकार पेड़ में कलियाँ निकलती हैं और कलियों में से फूटकर फूल निकलते हैं, वैसे ही विचार रूपी कलियों में से कार्यरूपी फूल निकलते हैं और सुख दुःख उनके फल होते हैं। जैसा मनुष्य बीज बोता है, उसके अनुसार फल लगता है। कहावत भी है "जैसा बोओगे, वैसा काटोगे"। खट्टे आम की गुठली से खट्टा आम पैदा होता है और मीठे आम की गुठली से मीठा आम होता है। जिस मनुष्य के विचार बुरे और गंदे होते हैं, वह सदा शोक और दुःख में ग्रसित होता है, परन्तु जिसके विचार विशुद्ध और पवित्र हैं, वह सदा हर्ष और आनन्द में निमग्न रहता है। मनुष्य की बढ़वारी प्रकृति के नियामानुसार होती रहती है। विचार के गुप्त साम्राज्य में कारण और कार्य का सम्बन्ध वैसा ही दृढ़ और स्थायी है जैसा

कि बाह्य स्थूल जगत् में दृष्टिगोचर होता है। यदि कोई मनुष्य सभ्य और सुशील है सदाचारी और धर्मात्मा है तो यह न समझना चाहिये कि वह दैवयोग से ऐसा है, अथवा किसी की दया वा कृपा से ऐसा है, किन्तु इसका कारण यह है कि वह अपने मन में निरन्तर सद्विचारों को स्थान देने में और शुभ भावनाओं के भाने में तत्पर रहा है और उन्हीं का यह परिणाम है। इसके विपरीत जो मनुष्य निरन्तर तुच्छ और घृणित विचारों को अपने मन में स्थान देता रहता है, वह अन्त में नीच और पशु तुल्य बन जाता है।

मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। वह चाहे तो अपने को बना सकता है और चाहे तो बिगाड़ सकता है। वह चाहे तो स्वयं अपने उच्च कर्त्तव्यों से 16 वें स्वर्ग में पहुँच सकता है और चाहे तो हीनाचारों से 7 वें नरक कुण्ड में गिर सकता है। अपने विचार रूपी शस्त्रागार में वह ऐसे-ऐसे शस्त्र बनाता है जिनसे अपने को नष्ट कर डालता है; परन्तु वहीं पर वह ऐसे-ऐसे यंत्र भी बना सकता है जिनसे अपने रहने के लिये हर्ष और आनन्द के विशाल भवन बना लेता है। सद्विचारों के ग्रहण करने और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करने से मनुष्य पूर्ण परमानन्द परमात्म पद को प्राप्त कर सकता है; परन्तु इसके विपरीत निंद्य कुत्सित विचारों से वही मनुष्य पशुओं से भी नीचे गिर जाता है। चरित्र की ये ही दो अवस्थायें हैं। इनमें पहली सबसे ऊँची है और पिछली सबसे नीची। इन्हीं दोनों के बीच में अन्य अवस्थायें हैं और मनुष्य ही उनका कर्त्ता धर्त्ता और निर्माता है।

आत्मा के सम्बन्ध में अब तक जितने उत्तम, उपयोगी और महत्वपूर्ण सिद्धांत मालूम हुए हैं, उनमें सब से अधिक उपयोगी और आनन्दवर्द्धक सिद्धान्त यह है कि मनुष्य अपने मन का राजा अपने स्वभाव का कर्त्ता और अपनी स्थिति, अवस्था और प्रारब्ध का निर्माता है।

मनुष्य बल, प्रेम और बुद्धि का पुतला है और अपने विचारों का राजा है, इसीलिये उसके पास प्रत्येक स्थिति और अवस्था की कुंजी है और उसमें भिन्न-भिन्न रूप धारण करने वाली एक ऐसी शक्ति विद्यमान है कि जिसके कारण वह जो चाहे बन सकता है जिस अवस्था में अपने को बदल सकता है।

मनुष्य प्रत्येक दशा में अपने ऊपर अधिकार रखता है, यहाँ तक कि अत्यन्त निर्बल और पतित अवस्था में भी पूर्ण रूप से वह अपना स्वामी और अधिकारी है। हाँ, यह अवश्य है कि इस पतित अवस्था में वह एक मूर्ख स्वामी है जो अपने कुटुम्ब का बुरी तरह से शासन करता है; परन्तु वही मनुष्य जब अपनी अवस्था पर विचार करने लगता है और अपने अस्तित्व के सिद्धान्त की सच्चे मन से जो करने लगता है, तो बुद्धिमान स्वामी बन जाता है जो बुद्धिमानी से अपनी शक्तियों का उपयोग करता है और ऐसे विचार स्थिर करता है कि उनका परिणाम सदैव उत्तम और लाभदायक होता है। ऐसा मनुष्य ही विवेकी स्वामी है। इस अवस्था को मनुष्य तभी प्राप्त कर सकता है कि जब वह अपने भीतर मनोबल के सिद्धांतों का अनुशीलन करे और इसके लिये निरंतर श्रम, उद्योग और विचार-अनुभव की आवश्यकता है।

जिस प्रकार बहुत सी खानों के खोदने और खोज करने के बाद सोने और हीरों का प्राप्ति होती है, उसी प्रकार मनुष्य अपने अस्तित्व के प्रत्येक सिद्धान्त को उसी समय मालूम कर सकता है जबकि वह

अपनी आत्मा की खानि को बहुत गहरा खोदे, अर्थात् बहुत कुछ विचार और अनुशीलन करे। यदि मनुष्य अपने विचारों को अपने वश में रक्खे, उनमें आवश्यकतानुकूल परिवर्तन करता रहे और इस बात का पता लगाये कि उनसे स्वयं उस पर, दूसरों पर तथा उसके जीवन और जीवन की घटनाओं पर क्या-क्या असर होते हैं, तथा अत्यंत शांति और धैर्य के साथ खोज करके कारण और कार्य के सम्बन्ध को मालूम करे और अपनी प्रतिदिन की साधारण से साधारण घटनाओं के अनुभव से भी उस आत्म-ज्ञान की प्राप्ति में लाभ उठावे जिसका नाम बल, विवेक और बुद्धि है, तो उस समय यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो सकती है कि स्वयं मनुष्य ही अपने चरित्र का कर्त्ता, अपने जीवन का विधाता और अपने भाग्य का निर्माता है। इसीलिये यह सिद्धांत बिल्कुल सच्चा है-

'जिन खोजा तिन पाइयाँ'

जो खोजेगा सो पावेगा, जो खटखटायेगा उसके लिये द्वार खुलेगा, कारण कि निरंतर के उद्योग, संतोष और अभ्यास से ही मनुष्य सरस्वती-मंदिर में प्रवेश पा सकता है। ❁❁❁

गतांक से आगे-

पुस्तकों का महत्व

(5)

आपसे अनुरोध है कि चन्द पन्ने नित पढ़ें,
ज्ञान की इन सीढ़ियों पर नित्य प्रति ऐसे चढ़ें,
दीप है पुस्तक हमें जो रोशनी है दे रही,
इस चमकते दीप को तुम हाथ में लेकर बढ़ें।

(6)

चाहे हो मैं कुछ खरीदूँ तो खरीदें पुस्तकें,
आपका निर्णय खरा कहते हैं जिसको सौ टके,
इस जहाँ में आदमी श्रम से थका है जा रहा,
पुस्तकें पढ़िये निरन्तर आप जब तन से थकें।

❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

महात्मा गांधी	2 अक्टूबर
लालबहादुर शास्त्री	2 अक्टूबर
रानी दुर्गावती	5 अक्टूबर
जयप्रकाश नारायण	11 अक्टूबर
अग्रसेन	13 अक्टूबर
सूर्यसेन	18 अक्टूबर
भगिनी निवेदिता	28 अक्टूबर
श्यामजी कृष्ण वर्मा	30 अक्टूबर
डॉ0 होमी भाभा	30 अक्टूबर
सरदार बल्भभाई पटेल	31 अक्टूबर
महर्षि वाल्मीकि	31 अक्टूबर

महापुरुषों की पुण्यतिथि

गुरू गोविन्दसिंह	7 अक्टूबर
जयप्रकाश नारायण	8 अक्टूबर
राममनोहर लोहिया	12 अक्टूबर
विट्ठलभाई पटेल	22 अक्टूबर
इन्दिरा गांधी	31 अक्टूबर

डाकतार दिवस	*10 अक्टूबर*
आजाद हिन्द फौज स्थापना दिवस	*20 अक्टूबर*
विजय दशमी	*22 अक्टूबर*

बोध कथा

लेखकः– स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती

एक कृषक की वाटिका में रात्रि के समय एक जन्तु आकर उसके फलों को खा जाता था। उसको पकड़ने के लिए उसने एक पिंजरा इस प्रकार का बनाया कि उसमें रक्खे खाद्य पदार्थों को देखकर यदि कोई उसमें चला जाए तो उसकी खिड़की स्वयमेव बन्द हो जाए, वाटिका में धर दिया। वह जानवर तो उस रात्रि को न आया, किन्तु एक साँप उसमें जाकर फँस गया। यत्न करने पर भी न निकल सका। सूर्योदय से पूर्व ही एक पुरुष का उस ओर से आगमन हुआ, साँप ने बड़ी ही दीनता से उसको कहा कि हे मित्र! मुझे इस पिंजरे से निकालकर प्राणदान दो। उस पुरुष ने देखा कि साँप पिंजरे में फँसा हुआ, अपने मुक्त होने के लिए प्रार्थना कर रहा है। मनुष्य ने कहा कि तुम विषधर जन्तु हो, मैंने तुमको निकाला और तुमने मुझे काटा, तो पुन: मैं उसका उपाय क्या करूँ? साँप ने कहा कि कुछ तो विचार करो, तुम तो मुझपर उपकार करोगे मैं तुमको काटने की इच्छा करूँ, ऐसा भला कभी हो सकता है? मनुष्य तो प्रतिज्ञा करके कभी भूल भी जाता है, परन्तु हम जानवरों का ऐसा स्वभाव नहीं है। मनुष्य के मन में दया आई। उसने पिंजरे की खिड़की खोल दी। साँप निकलकर यह कहने लगा कि मित्र! वे देखो वाटिका का स्वामी कन्धे पर लाठी उठाये आ रहा है और मैं क्षुधा के कारण शीघ्रता से चल नहीं सकता। उसने मुझे देखकर मार ही डालना है। तुम्हारा किया उपकार–अपकार के रूप में बदल जाएगा, ऐसा न होना चाहिए। उसने कहा–अब क्या हो सकता है? साँप बोला कि मुझे अपनी आस्तीन में छिपाकर कुछ दूर आगे छोड़ दो, तुम्हारा द्विगुणित पुण्य होगा। मनुष्य ने उसको आस्तीन में ले लिया, कुछ दूर चलकर उसने साँप से कहा कि अब तुम इस जंगल में चले जाओ, एकान्त है। यह सुनते ही साँप ने उसके बाहु में चक्र लगाया और कहने लगा कि मैं तुमको काटूँगा।

उसकी यह बात सुनकर मनुष्य दु:खी होकर कहने लगा कि तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं नहीं काटूँगा, अब तुम काटना चाहते हो। उपकार के बदले यह अपकार करते हो? साँप ने कहा कि मनुष्य से सर्वप्राणी दु:खी हैं, जितना यह उपकार करता है उसके द्विगुण अपकार करता है। जब हमारा शत्रु है तब हमको समय मिलने पर इससे शत्रुता करनी ही ठीक है। दूसरा एक प्रलोभन मेरे सामने है, जो मुझे काटने के लिए तैयार करता है, वह यह है कि जब हम किसी प्राणी को काटते हैं, तो कुछ विष के बिन्दु तो उसके शरीर में जाते हैं और उसका कुछ अंश हमारे उदर में जाता है, जिसके नशे से बड़ी ही प्रसन्नता होती है, जैसे शराबी को मदिरा पान करने से, तुम बहुत दिनों के पश्चात् मिले हो, अब मैं तुमको छोड़ नहीं सकता हूँ।

इस बात–चीत के पश्चात् मनुष्य ने कहा कि मित्र! किसी से न्याय तो करा लो कि यह तुम्हारा कार्य ठीक है कि नहीं? साँप ने इसको मान लिया। सामने एक ऊँट आ निकला। साँप ने सर्ववृत्तान्त सुनाकर

प्रश्न किया कि अब मुझे इसको काटना चाहिए या नहीं? ऊँट ने कहा कि इसको काटना ही चाहिए। कारण यह है कि मनुष्य सब जानवरों से काम लेता और पुनः उनको सताता है। यदि जानवर न हों तो इसका जीवन नहीं रहता और यदि मनुष्य न रहे तो सबका जीवननिर्वाह भली प्रकार से होता है। ऊँट कुछ अपनी दुःखमयी कहानी सुनाने लगा कि जब मायी हाथी, अश्वादि के पश्चात् मुझे बना रहा था तब मैंने सोचा कि इन सबकी पीठें साफ हैं इन पर तो लोग सवारी किया करेंगे, मैं इस कष्ट से बचने के लिए अपनी बेढंगी पीठ को ही लेकर भाग चला, निर्माता ने कहा भी कि पीठ ठीक हो लेने दे, परन्तु मैंने कहा कि मेरी पीठ ऐसी ही अच्छी है, परन्तु इसने (मनुष्य ने) क्या उपद्रव किया कि एक लकड़ी का यंत्र बना मेरी पीठ पर धर देता है और उस पर एक-दो के स्थान पर 8-10 को बैठाता है और पाँच-पाँच मन की गोन भी इधर-उधर लटका देता है। एक नकेल नाक में डालकर कभी नीचे से ऊपर को ले-जाता और कभी ऊपर से नीचे को ले-जाता है। मैं इसको विधाता का शाप कहूँ या इसकी बुद्धिमत्ता अथवा अपनी मूर्खता कहूँ, इसको तो बिना सोचे ही काटना ठीक है। न्याय साँप के अनुकूल हुआ। मनुष्य व्याकुल था, अब क्या किया जाए? साहस से साँप को कहने लगा कि एक बार तुमने पूछा है, अब एक बार मुझको पूछ लेने दो, जो परिणाम निकलेगा ठीक है। साँप ने स्वीकार कर लिया। सामने एक पुरुष आया दोनों ने अपना-अपना वृत्तान्त सुनाकर न्याय माँगा। मनुष्य ने कहा कि मैं जब तक मौका न देख लूँ तब तक ठीक नहीं कह सकता। तब वे सब निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे। मनुष्य ने साँप से पूछा। तुम पिंजरे में थे या बाहर? उसने कहा कि मैं पिंजरे के भीतर था, उसने कहा कि मुझे बता दो कि तुम इसमें किस प्रकार बैठे थे? साँप आस्तीन से निकलकर पिंजरे में चला गया। पुनः मनुष्य ने पूछा कि पिंजरे की खिड़की बन्द थी या खुली? उसने उत्तर दिया कि बन्द थी, उसने कहा कि खिड़की को बन्द कर दो। साँप विवश होकर पूछने लगा यह कैसा न्याय किया? उसने उत्तर दिया कि जो उपकार करनेवालों के साथ अपकार करते हैं, जो नेकी करनेवालों के साथ बदी से पेश आते हैं, वह परमात्मा के न्याय से पुनः-पुनः बन्धन में आते हैं।

सारांश– जो मनुष्य समाज अनिष्ट रीति और नीति का, आस्तीन के साँप के समान, साथ देती आती हो जब तक उसको किसी बुद्धिमान मनुष्य का उपदेश न मिले और अपना हित जानकर उसको ग्रहण न करे, तब तक दुःख से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है और जो उपकार करनेवालों के साथ अपकार करना चाहते हैं, वे समय की गति से भ्रष्ट मति होकर सर्पवत् स्वयं ही कष्ट पाते हैं। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 45 का शेष–

सबको उपासना करने योग्य है उसी का आश्रय सब करें।

(24) हे जगदीश्वर! जैसे पिता हम लोगों को पुष्ट करता है वैसे आप पालन कीजिये, जैसे आप्त विद्वानजन विद्यार्थियों के लिये शिक्षा देकर सत्य बुद्धि का ग्रहण कराता है वैसे ही हमको सत्य-विज्ञान ग्रहण कराओ, जिससे हम लोग सृष्टि विद्या और आपको पाकर सर्वदैव आनन्दित हों।

(25) वे ही विद्वानजन संसार के उपकारी होते हैं जो दीर्घ ब्रह्मचर्य और आप्त विद्वानों की उत्तेजनासे शिक्षा पाय समस्त विद्या पढ़ परमात्मा से व्याप्त सर्व सृष्टि-क्रम में प्रवेश करते हैं। ❁❁❁

पूजा धर्म

लेखक: महात्मा हंसराज

(1) हे विद्वानो! ईश्वर ने जिसके लिये बनाया है जिसलिये ऋत्विज् और यजमान सेवन करते हैं तदर्थ वह अग्नि तुम लोगों से बहुत व्यवहारों में प्रयुक्त किया हुआ अनेक कार्यों का सिद्ध करनेवाला होता है।

(2) जो मनुष्य अग्निविद्या को जानके इस अग्नि में सुगन्ध्यादि का होम करते और इससे कार्यों को सिद्ध करते हैं और जो अच्छे प्रकार विचार और ध्यान करके परमात्मा को जानते हैं उनको अग्नि धनाढय और परमात्मा विज्ञानवान् करता है।

(3) हे मनुष्यो! जो अमृत रूप ईश्वर का विज्ञान, विविध सुखों से तृप्त करने वाली परिपूर्ण लक्ष्मी को तुम्हारे लिये देता है उसके समीप वीरता सुन्दरपन और सेवा को छोड़के निष्ठुर कृतघ्न मत होओ।

(4) यदि सब मनुष्य सबके धर्त्ता योगियों को प्राप्त होने योग्य परमेश्वर की उपासना करें तो वे सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हों।

(5) हे मनुष्यो! जो सब प्रजा को नियम व्यवस्था में स्थापक, सूर्यादि प्रजा का प्रकाशक, सबका उपास्यदेव, वह पूछने, सुनने, जानने, विचारने, और मानने योग्य है।

(6) हे मनुष्यो! जिस परमेश्वर के भय से वायु आदि पदार्थ अपने-2 काम में नियुक्त होते हैं उसके सत्य न्याय के भय से सब जीव अधर्म से भय कर धर्म में रुचि करते हैं। जिसके प्रभाव से पृथिवी सूर्य आदि लोक अपनी-2 परिधि में नियम से भ्रमते है अपने स्वरूप के धारण से जगत् का उपकार करते हैं वही परमात्मा सबको ध्यान करने योग्य है।

(7) हे मनुष्यो! जिसके आधार में पृथिवी सूर्य स्थित होके अपना कार्य करते हैं उस परमात्मा को सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि आदि कुछ प्रकाश नहीं कर सकते किन्तु उसी प्रकाशित परमेश्वर के प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं।

(8) हे मनुष्यो! जिसमें सब दिशा, वेदवाणी, पवन और रात्रि आदि काल के अवयव सम्बद्ध हैं उसी समय ऐश्वर्य के देनेवाले सूर्य के तुल्य स्वयं प्रकाशित परमात्मा का नित्य ध्यान करो।

(9) हे मनुष्यो! योगी जन जिस परमेश्वर में स्थिर होकर इष्ट काम को सिद्ध करते हैं उसी परमात्मा के ध्यान से सब कामनाओं को तुम लोग भी प्राप्त होओ।

(10) हे मनुष्यो! जो अपत्य के लिये माता-पिता के तुल्य कृपालु, रक्षक, योगी के तुल्य सब काम देने वाला, सब विश्व का कर्त्ता, सबका रक्षक ईश्वर है उसी की नित्य उपासना करो।

(11) हे मनुष्यो! जिसकी उपासना से विद्वान लोग पूर्ण ऐश्वर्य और पूर्ण विद्या को प्राप्त होते हैं। जो

उपासना किया हुआ समस्त ऐश्वर्य को देता है उसी की नित्य सेवा करो।

(12) हे मनुष्यो! जो परमात्मा धन ऐश्वर्य और प्रशंसा के योग्य विज्ञान और राज्य को पुरुषार्थियो के लिये देता है उसी की प्रीतिपूर्वक निरन्तर उपासना किया करो।

(13) जो इस पृथिव्यादि विद्या के साथ बिजली की विद्या को, प्राणविद्या के साथ जीवविद्या को, कालविद्या के साथ प्रकृति के विज्ञान को और वेदविद्या से परमात्मा के विज्ञान कराने को समर्थ होता है उसी का सब लोग विद्या प्राप्ति के लिये आश्रय करें।

(14) हे मनुष्यो! जिसके बिना न विद्या न सुख प्राप्त होता है। जो विद्वानों का संग, योगाभ्यास और धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य है उसी जगदीश्वर की सदा उपासना करो।

(15) हे मनुष्यो! जैसे सामग्रीवाले अग्निविद्या को प्राप्त होके निरन्तर आनन्दित होते हैं वैसे ही ईश्वर को प्राप्त होके निरन्तर श्रीमान् होते हैं।

(16) हे मनुष्यो! जैसे घर में प्रज्वलित किया अग्नि अन्धकार और शीत की निवृत्ति करता है वैसे ही उपासना किया परमेश्वर अज्ञान और अधर्माचरण को दूर कर धर्म और विद्याग्रहण में प्रवृत्ति कराके सम्यक् रक्षा करता है।

(17) हे मनुष्यो! जैसे विद्वानों से सम्यक् बढ़ाया हुआ अग्नि दरिद्रता का विनाश करता है वैसे ही उपासना किया परमेश्वर अज्ञान को निवृत्त करता है। जैसे आप्त लोग सबकी सदा रक्षा करते हैं वैसे परमात्मा सब संसार की रक्षा करता है।

(18) जो सूर्य के तुल्य परोपकार, विद्या और उपदेश में प्रसिद्ध है जैसे गौएँ बछरों की रक्षा करती वैसे विद्या-दान से सब की रक्षा करनेवाले, सर्वदा घूमते हुए, वेद, ईश्वर को जानने के लिये राज्य-रक्षणार्थ राजा के तुल्य न्यायशील होकर, सब मूर्खों को बोध कराते, वे सदा सबको सत्कार करने योग्य होते हैं।

(19) हे मनुष्यो! जैसे चरवाहों से रहित गौयें अपने बछड़ों को और वायु अन्तरिक्षस्थ किरणों को और मित्र मित्र को प्राप्त होता है वैसे ही अपने किये हुए शुभ-अशुभ कर्मों को जीव ईश्वर-व्यवस्था से प्राप्त होते हैं।

(20) हे राजा! जो पहले विद्वान् होकर विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं व जो ज्येष्ठ कनिष्ठों के प्रति पिता के समान वर्त्ताव रखते हैं वा जो योगीजन परमात्मा को समाधि से अपने आत्मा में अच्छे प्रकार आरोप के औरों को उपदेश देते हैं उनके लिये तुम शरीर मन और धन को धारण करो।

(21) हे मनुष्यो! यदि निरन्तर सुखेच्छा हो तो परमात्मा की ही आप लोग उपासना करें।

(22) हे मनुष्यो! जिस कारण परमेश्वर के तुल्य व अधिक अन्य पदार्थ कोई नहीं उत्पन्न हुआ न कभी भी उत्पन्न होगा, इससे ही उसकी उपासना और प्रशंसा हम लोग नित्य करें।

(23) हे मनुष्यो! जो परमात्मा अणु से अणु, सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा सनातन सर्वाधार सर्वव्यापक

-शेष पृष्ठ सं 43 पर

पुराणों को किसने बनाया?

लेखक: डॉ0 श्रीराम आर्य

साधारणतया पुराण शब्द का अर्थ होता है पुराना या प्राचीन। परन्तु वर्तमान काल में यह शब्द उन अष्टादश ग्रन्थों के लिए रूढ़ि हो गया है, जिन्हें वर्तमान तथाकथित सनातन धर्म में मुख्य शास्त्र माना जाता है, जिसमें भागवतादि ग्रन्थ शामिल हैं।

पौराणिक विद्वानों की मान्यता है कि इन ग्रन्थों की रचना महर्षि कृष्ण द्वैपायन अर्थात् वेद व्यास जी महाराज ने द्वापर युग के अन्त में की थी, जिसे लगभग 5060 वर्ष अब तक होते हैं। इसलिए वे लोग निम्न प्रमाण प्रस्तुत करते हैं–

पुराण व्यास जी ने बनाए

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः। (देवी भागवत पुराण, 1/3/7)

अर्थात्– 18 पुराणों को सत्यवती के पुत्र व्यासदेव जी ने बनाया था।

पौराणिक विद्वानों की आस्था पुराण के इस प्रमाण पर इतनी अधिक है कि उनको इस विश्वास से हटाना सरल कार्य नहीं है। कोई कितने भी उत्तम तर्क व प्रमाण इसके विपरीत उनके सामने उपस्थित करे। वे उसे सुनने तक को तैयार नहीं होते हैं।

उनके इस विश्वास का एक आधार यह भी होता है कि समस्त पुराण एवं उप–पुराणों के ऊपर उनके लेखक के स्थान पर 'व्यास कृत' शब्द छपा होता है। सम्पूर्ण सनातनी साहित्य में चाहे वे भाषा में हों अथवा संस्कृत में, गद्य में हों अथवा पद्य में लिखे हों, पुराणों को व्यास कृत ही माना गया है।

अत: किसी भी पुराणों के विश्वासी के लिए यह मानना कि पुराणों को व्यास कृत मानने वाले सारे ग्रन्थकार व विद्वान गलती पर हैं, एक अति दुष्कर बात है।

हम आज इस पुस्तक में वर्तमान सनातनी विद्वानों के इसी दावे को तर्क व प्रमाणों की कसौटी पर परीक्षा करके यह सिद्ध करेंगे कि उनका यह दावा सत्य नहीं है।

वरन् सत्य बात यह है कि पुराणों का रचना काल व्यास जी के बहुत बाद का है, उनके बनाने वाले अनेक व्यक्ति रहे हैं अर्थात् सारे पुराण किसी भी एक व्यक्ति की रचनाएं नहीं हैं। पुराणों का रचनाकाल बौद्ध व जैन धर्म के बाद अर्थात् 1500 वर्ष से लेकर अंग्रेजों के भारत के शासन काल तक चलता रहा है। हमारा यह दावा अनुमान पर आधारित नहीं है। वरन् पुराणों के अन्दर ही इस विषय की अन्त: साक्षी विद्यमान है।

पौराणिक विद्वान अपने पुराणों को भी नहीं पढ़ते हैं। अन्यथा उनको अपने दावे को मिथ्या सिद्ध

करने वाले प्रमाण पुराणों में ही मिल सकते हैं। 18 पुराणों का कर्त्ता व्यास जी को जहां एक स्थान पर बताया गया है, वहां दूसरे स्थल पर लिखा है–

पुराण ब्रह्माजी ने बनाए

लब्ध विद्येन विधिना प्रजा सृष्टि वितन्वता।
प्रथमं सर्वं शास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।। 31।।
अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
प्रवृत्तिस्सर्वं शास्त्राणां तन्मुखाद् भवत्ततः।। 32।।

(शिव पुराण वायु सहिंता, अध्याय 1)

अर्थात्– ब्रह्मा जी ने विद्या को प्राप्त हो, प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से सब शास्त्रों के बीच में प्रथम पुराणों को उत्पन्न किया ॥ 31॥

इसके बाद उनके मुँह से वेद निर्गत हुए। उसके बाद ब्रह्मा के मुँह से सब शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई॥ 32॥

यही प्रमाण मत्स्य पुराण सृष्टि प्रकरण अध्याय 3 तथा वायु पुराण 1-60 में भी आता है। इससे सनातनी विद्वानों का दावा मिथ्या हो जाता है कि व्यास जी ने पुराण बनाये थे।

व्यास जी को हुए लगभग 5000 वर्ष होते हैं, वे महाभारत काल में थे, जबकि सृष्टि की रचना हुए लगभग दो अरब वर्ष बीत चुके हैं।

इन दोनों प्रमाणों में कौन-सा सच्चा है और कौन-सा झूठा है? यह निर्णय करना सनातनी विद्वानों का काम है न कि हमारा। हम तो दोनों ही प्रमाणों को मिथ्या मानते हैं। अब कुछ और नवीन प्रमाण देखिए–

पुराण पाराशर जी ने बनाए

पुलत्स्य ने वरदान दिया–

पुराण संहिता कर्ता भवान्वत्स भविष्यति।। 26।। (शिव पुराण वायु संहिता, अध्याय 1)

अर्थात्– हे पाराशर जी! तुम पुराण संहिता के बनाने वाले होओगे।

पाराशर उवाच–

सोऽहं वदाम्यशेषं ते मैत्रेय परिप्रच्छते।
पुराण संहितां सम्यक् तां निबोध यथातथम्।। 30।। (विष्णु पुराण 1-1)

पाराशर जी कहा–

अर्थ– हे मैत्रेय! तुम्हारे पूछने से मैं उस सम्पूर्ण पुराण संहिता को तुम्हें सुनाता हूँ, तुम उसे ध्यान देकर सुनो।

इस प्रमाण के अनुसार पुराणों के बनाने वाले व्यास जी न होकर पाराशर जी अर्थात् व्यास जी के पिताजी थे। पुराण का यह प्रमाण पुराणों के व्यास कृत होने के दावे का स्पष्ट खण्डन करता है।

हर द्वापर में नये पुराण बनते हैं

एवं व्यसताश्च वेदाश्च द्वापरे द्वापरे द्विजा।

निर्मितानि पुराणानि अन्यानि च ततः परम्।। 35।। (शिव पुराण वायु संहिता, अध्याय 1)

अर्थात्– हे ब्राह्मणों! इस प्रकार प्रत्येक द्वापर में वेदों का विभाग होता है और दूसरे पुराण निर्मित होते हैं।

इस प्रमाण से स्पष्ट है कि ये पुराण नित्य ग्रन्थ नहीं हैं। यह कालान्तर में नष्ट हो जाते हैं। यहां एक बड़ी पहेली पैदा होती है। इस पृथ्वी की आयु 4 अरब 32 करोड़ वर्ष की है। इसमें 1 हजार चतुर्युगी होती हैं। प्रत्येक चतुर्युगी में सतयुग–त्रेता–द्वापर व कलियुग यह चार युग होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी की आयु में एक–एक हजार बार चारों युग क्रमशः आते जाते हैं।

हम जिस चतुर्युगी में रह रहे हैं। वह सातवें वैवस्वत मन्वन्तर की 28वीं चतुर्युगी है। इसके पूर्व 6 मन्वन्तर बीत चुके हैं, जिनमें 457 बार द्वापर आया और निकल गया तथा 28 बार इस सातवें मन्वन्तर में भी अपने क्रम पर आकर निकल गया।

इस प्रकार जबसे सृष्टि बनी थी, तब से अब तक 457 बार सतयुग, 457 बार त्रेता, 457 बार द्वापर, 457 बार कलियुग आये और निकल गये और अब 457वीं बार कलियुग चालू है।

इसका अर्थ यह होता है कि 456 बार सृष्टि काल में पुराण नये बनकर नष्ट हो चुके हैं। यह 457वीं बार के बने हुए पुराण हैं।

पुराणों के अनुसार यदि वेदव्यास जी ने पुराणों को बनाया था तो वह 457वें द्वापर में सत्यवती व पाराशर के संयोग से पैदा हुए थे। इस प्रकार पुराण ब्रह्माजी के द्वारा वेदों से पूर्व एवं सृष्टि के आदि में उत्पन्न सिद्ध नहीं होते हैं।

साथ ही पुराण का यह दावा भी मिथ्या हो जाता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी पुराणों को बनाते हैं। एक प्रमाण पुराणों को द्वापर में बना हुआ बताता है। दूसरा प्रमाण सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी द्वारा निर्मित एवं नित्य मानता है। तीसरा प्रमाण इन पुराणों का कर्त्ता पाराशर जी को बताता है। यह सब परस्पर विरूद्ध बातें हैं और तीनों ही मिथ्या हैं।

पुराणों की मान्यता है कि पुराण 18 हैं। इसी प्रकार उप–पुराण भी 18 माने जाते हैं। किन्तु भिन्न–भिन्न पुराणों में इनकी सूची व नामावली में बहुत भेद मिलता है। साथ ही पुराणों की श्लोक संख्या में भी जमीन–आसमान का अन्तर देखा जाता है।

पुराण पहले 26 थे

षड़विंशति पुराणानां मध्येऽप्येकं श्रृणोति यः।

पठेद्वाभक्तियुक्तस्तु स मुक्तो नात्र संशयः।। 41।। (शिव पुराण उमां संहिता अध्याय 13)

अर्थात्– 26 पुराणों को जो सुनता है और भक्ति पूर्वक पाठ करता है। वह मुक्त होगा, इसमें संशय नहीं।

इससे स्पष्ट है कि शिव पुराण के बनने के समय पुराणों की संख्या 26 रही होगी। किन्तु बाद में यह संख्या 18 निश्चित की गयी है।

पुराणों की भिन्न-भिन्न सूचियां जो उनमें दी हैं, हम उनमें से कुछ यहां प्रस्तुत करते हैं। जिनसे यह देखा जा सकेगा कि अब भी पुराणों की ठीक-ठीक संख्या व उनकी श्लोक संख्या का पता नहीं लगता है।

भागवत, देवी भागवत तथा मत्स्य पुराण में 18 पुराणों के नाम निम्न प्रकार दिये गये हैं, देखिये–

18 पुराणों की विभिन्न सूचियाँ

1–ब्रह्म, 2–पदम्, 3–विष्णु, 4–वायु, 5–भागवत, 6–नारद, 7–मार्कण्डेय, 8–अग्नि, 9–भविष्य, 10–ब्रह्मवैवर्त, 11–लिंग, 12–स्कन्द, 13–वामन, 14–कूर्म, 15–मत्स्य, 16–गरूड़, 17–ब्रह्माण्ड, 18–वाराह।

ब्रह्मवैवर्त और पद्म पुराणों में सूची निम्न प्रकार दी है–

1–ब्रह्म, 2–पद्म, 3–विष्णु, 4–शिव, 5–भागवत, 6–नारद, 7–मार्कण्डेय, 8–अग्नि, 9–भविष्य, 10–ब्रह्मवैवर्त, 11–लिंग, 12–वाराह, 13–वामन, 14–कूर्म, 15–स्कन्द, 16–मत्स्य, 17–गरूड़, 18–ब्रह्माण्ड।

भविष्य पुराण में यही सूची निम्न प्रकार दी है–

1–विष्णु, 2–स्कन्द, 3–पद्म, 4–भागवत, 5–ब्रह्म, 6–गरूड़, 7–मत्स्य, 8–कूर्म, 9–नृसिंह, 10–वामन, 11–शिव, 12–वायु, 13–मार्कण्डेय, 14–अग्नि, 15–लिंग, 16–ब्रह्माण्ड, 17–वाराह, 18–भविष्य।

उपरोक्त छः पुराणों की पुराणोक्त सूचियां देखने पर ज्ञात होता है कि भागवत, देवी भागवत तथा मत्स्य पुराणों ने जहां वायु पुराण को मुख्य पुराणों में मानकर अपनी सूची 18 पुराणों की पूरी की है, वहां ब्रह्मवैवर्त और पद्म पुराणों में वायु को निकाल दिया गया है और उसके स्थान पर शिवपुराण को अपनी सूची में सम्मिलित किया है।

भविष्य पुराण ने नारद और ब्रह्मवैवर्त को मुख्य पुराण नहीं मानकर इन्हें सूची में से निकाल बाहर किया है तथा इनके स्थान पर नृसिंह, शिव तथा वायु इन पुराणों को अपनी सूची में सम्मिलित करके 18 पुराणों की सूची तैयार की है।

यह सूचियां भागवत स्कन्द 12 अध्याय 8, देवी भागवत स्कन्द 1, अध्याय 3 पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय 236, ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय 131, मत्स्य पुराण, अध्याय 53, भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व खण्ड 3 अध्याय 28 में देखी जा सकती है। **–(शेष अगले अंक में)**

ब्रह्मचर्य

लेखकः पण्डित सत्यव्रत

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्ति तं जातं दुष्टुमभिसंयन्ति देवाः।। अथर्व॥

वीर्य की महत्ता

मनुष्य के शरीर का तत्व-भाग वीर्य है। वीर्य का स्तम्भन कठिन कार्य है। इसकी रक्षा की चिन्ता योगियों की उन्निद्र आँखों में, ऋषियों के चेहरों की झुर्रियों में और ब्रह्मचारियों की नियन्त्रित दिन-चर्या में किसे नहीं दीख पड़ती? मूर्ख लोग भले ही जीवनशक्ति के रहस्य को न समझते हुए उल्टे मार्ग पर चलें परन्तु समझदार लोग वीर्य-रक्षा को जीवन लक्ष्य-बिन्दु जानते हैं। इस हिमाद्रि-सम-कठिन दुरूह कार्य में तत्व-ज्ञानियों के चिन्तित रहने का मुख्य कारण यह है कि शरीर के सार अंश को अन्दर ही अन्दर खपा लेने से विद्या और बल की सतत् वृद्धि होती है, वीर्य-नाश से मनुष्य का चौमुखा ह्रास होता है। वीर्य-रक्षा बड़े महत्व का कार्य है।

वीर्य-रक्षा के महत्व को समझने के लिए वीर्य क्या वस्तु है, इस बात को समझ लेना आवश्यक है। हम यहाँ पर भारतीय आयुर्वेद तथा पाश्चात्य-आयुर्विज्ञान, दोनों के वीर्य विषयक मुख्य-मुख्य विचारों का उल्लेख करेंगे ताकि हमारे पाठक इस विषय को भली प्रकार समझ सकें।

1-भारतीय आयुर्वेद

'अष्टांग हृदय' (शरीर स्थान, अध्याय 3, श्लोक 6) में लिखा है-

"**रसाद्रक्तं ततो मांसन्मेदस्ततोऽस्थि च अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं** .... "।

भोजन किये हुए पदार्थ से पहले रस बनता है। रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से वीर्य, वीर्य अन्तिम धातु है। मैशीन में इसके बनने का दर्जा सातवां है। इसके बनाने में शरीर को जीवन के लिए आवश्यक अन्य सब पदार्थों की अपेक्षा अधिक मेहनत करनी पड़ती है। रस की अपेक्षा रक्त में तत्व-भाग अधिक है। उत्तरोत्तर सार भाग बढ़ता ही जाता है। शरीर की भौतिक शक्तियों का अन्तिम सार वीर्य है। थोड़े से वीर्य को बनाने के लिए रक्त की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। किंचितमात्र वीर्य का नष्ट हो जाना अत्यधिक रुधिर के नष्ट हो जाने के बराबर है। आयुर्वेद के इस सिद्धान्त को अनेक पाश्चात्य-पण्डितों ने भी मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है। डॉ0 कोवन

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि सायन्स आफ न्यू लाइफ' के 106 पृष्ठ पर लिखते हैं–

"शरीर के किसी भाग में से यदि 40 औंस रुधिर निकाल लिया जाय तो वह एक औंस वीर्य के बराबर होता है–अर्थात् 40 औंस रुधिर से एक औंस वीर्य बनता है।"

अमेरिका के प्रसिद्ध शरीर–वृद्धि–शास्त्रज्ञ, मैकफै डन महोदय ने अपनी पुस्तक "मैनहुड एण्ड मैरेज" में इसी विचार को प्रकट किया है। 'एकसाक्लोपीडिया आफ फिजिकल कल्चर' के 2772 पृष्ठ पर वे लिखते हैं–

"कई विद्वानों के कथनानुसार चालीस औंस रुधिर से एक औंस वीर्य बनता है परन्तु एक विद्वान का कथन है कि एक औंस वीर्य की शक्ति साठ औंस रुधिर के बराबर है।"

सम्भवतः इस विषय में पूरा–2 हिसाब न हो सकता हो, तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि थोड़े से भी वीर्य को उत्पन्न करने के लिए रक्त की बहुत अधिक मात्रा खर्च होती है। भारत वर्ष में यह चर्चा सर्व साधारण तक में पाई जाती है। यहां हर कोई जानता है कि वीर्य के बनने में 40, 50 या 60 गुना रुधिर काम में आ जाता है। पाश्चात्य लोगों में यह विचार हाल ही में उत्पन्न हुआ है। मूलतः यह भारतीय आयुर्वेद का विचार है। जब रुधिर में शरीर को जीवित या मृत बना देने की शक्ति है तब वीर्य में वह शक्ति अप्रत्याख्यात रूप से कई गुनी होनी चाहिये, इस बात में किसे सन्देह हो सकता है?

आयुर्वेद का कथन है कि रुधिर से वीर्य की अवस्था तक पहुंचने में उपर्युक्त सात मंजिलें तय करनी पड़ती हैं। इन का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, अन्त में रक्त से वीर्य किस प्रकार बन जाता है–इस विषय पर आयुर्वेद की दृष्टि से अभी तक पूरा–2 अनुसन्धान ही हुआ। आयुर्वेद से हमें इतना अवश्य पता चलता है कि रुधिर को वीर्य बनने के लिए बड़े लम्बे चौड़े सात फेरों वाले रास्ते में से गुजरना पड़ता है। रक्त का सार भाग बनते–2 अन्त में वीर्य बनता है।

आयुर्वेद के अनुसार वीर्य का स्थान सम्पूर्ण शरीर है। हृदय में विकार उपस्थित होने पर वीर्य शरीर में स्रवित होकर अण्डकोषों द्वारा प्रकट रूप में उत्पन्न हो जाता है। इसी विषय को स्पष्ट करते हुए 'भाव–प्रकाश' कार लिखते हैं–

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ यथा रसः।
एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्।। 240।।
कृत्स्नदेहस्थितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा।
स्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते।। 242।।

जिस प्रकार दूध को मथने से घी निकल आता है उसी प्रकार बहु–वीर्य वाले देह को भी मथने से वीर्य निकल आता है, जिस प्रकार ईख को पेरने से रस निकलता है उसी प्रकार अल्पवीर्य वाले पुरुष के शरीर में से भी अत्यन्त मन्थन करने से वीर्य प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शरीर में रहने वाला वीर्य मानसिक प्रसन्नता तथा सम्भोग के समय प्रवृत्त होता है।

2–पाश्चात्य–आयुर्विज्ञान

पाश्चात्य आयुर्विज्ञान के पण्डित वीर्य को सात धातुओं का सार नहीं मानते। उनके कथनानुसार वीर्य सीधा रक्त से उत्पन्न होता है–उसे सात मंजिलों में से गुजरने की आवश्यकता नहीं होती। वे लोग वीर्य को सम्पूर्ण–शरीरस्थ नहीं मानते। उनका कथन है कि मनोविकार उपस्थित होने पर अण्डकोष अपनी क्रिया द्वारा एक द्रव उत्पन्न करते हैं। यही द्रव 'उत्पादक–वीर्य' है। जिस प्रकार उत्तेजक पदार्थ के सन्मुख आने पर आंखों से आंसु तथा मुख से लार टपकती है। उसी प्रकार अण्ड–कोषों की ग्रन्थियों (ग्लैंड) से वीर्य निकलता है।

अण्डकोषों में से दो प्रकार का रस उत्पन्न होता है । एक भीतरी, दूसरा बाहरी। भीतरी को 'इन्टरनल सिक्रीशन' अन्त:स्राव तथा बाहरी को 'एक्सटरनल सिक्रीशन' बहि:स्राव कहते हैं। अन्त:स्राव हर समय अण्डकोषों से होता रहता है और शरीर में अन्दर ही अन्दर खपता रहता है। यह रस सम्पूर्ण देह में व्याप्त होकर आंखों को तेज, मुख को कान्ति तथा अंग प्रत्यंग को सुडौलपन देता है। चौदह, पन्द्रह वर्ष की अवस्था में बालक के शरीर में जो अचानक परविर्तन देख पड़ते हैं उनका कारण अन्त:स्राव का भीतर ही भीतर खप जाना है। जिन प्राणियों के अण्डकोष निकाल दिये जाते हैं वे क्रिया–शून्य तथा स्फूर्ति–हीन हो जाते हैं। घोड़े, बैल तथा बकरों को देखकर यह बात आसानी से समझ में आ जाती है। मनुष्यों में भी जिनके अण्डकोष निकाल दिये जायं वे निस्तेज तथा निर्वीर्य हो जाते हैं। हीजड़ों का सा हाल हो जाता है। वे किसी प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक काम के नहीं रहते।

वहि:स्राव के विषय में पाश्चात्यों का यह कथन है कि इस में शुक्र–कीटों के साथ–2 जनन–प्रदेश के अन्य अनेक स्थानों से उत्पन्न हुए द्रव भी मिल जाते हैं। शुक्र–कीट (स्पर्मैटोजोआ) तथा उन द्रवों के समुदाय का नाम ही वीर्य है। शुक्र कीटों की उत्पत्ति अण्डकोषों से होती है और वे ही संतानोत्पत्ति के कारण हैं। जिस पुरुष के वीर्य में शुक्र कीट नहीं होते वह नपुंसक कहलाता है। शराब, तम्बाकू, चाय, काफी, अफीम आदि पदार्थों के सेवन से शुक्र–कीट क्रिया हीन हो जाते हैं अत: उत्पादन–शक्ति को स्थिर रखने के लिये इनका त्याग ही सर्वोत्तम उपाय है। शुक्र–कीट शरीर में खप जाते हैं या नहीं, इस विषय में विद्वानों में सम्मति भेद है, परन्तु डॉ0 कोवन तथा अन्य अनेक पण्डितों का मत है कि यदि शुक्र–कीटों को कुविचारों तथा कुकर्मों द्वारा शरीर से बाहर न फेंक दिया जाय तो वही कीट जो नये जीवन को उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखते हैं शरीर में खप कर व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक बल को अद्भुत रूप से बड़ा सकते हैं। डॉ0 गार्डनर महोदय का कथन है कि–

''वीर्य–कीट, रुधिर का सार–तम भाग है। प्रकृति ने इसे जीवन–दातृ–शक्ति ही नहीं दी परन्तु इसमें वैयक्तिक जीवन को समृद्ध करने का जादू भी भर दिया है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि शुक्र–कीट के शरीर में खप जाने से सम्पूर्ण देह में संजीवनी शक्ति का संचार हो जाता है। ''

मनुष्य के शरीर की रचना को जानने वाले सभी विद्वान् एकमत होकर मानते हैं कि भीतरी

अथवा बाहरी किसी भी वीर्य शक्ति का ह्रास मनुष्य की वृद्धि के लिए अत्यन्त हानिकर है। शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के लिए आत्म-संयम द्वारा वीर्य-स्तम्भन अत्यन्त आवश्यक है।

तुलना

वीर्य के सम्बन्ध में पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख करते हुए उनकी तुलना पर विचार करना बड़ा रोचक विषय है। सामान्य-दृष्टि से विचार करने पर दोनों में निम्नलिखित मोटे-2 भेद प्रतीत होते हैं-

भेद

1-आयुर्वेद में वीर्य सात धातुओं के क्रम से तथा पाश्चात्य आयुर्विज्ञान के अनुसार सीधा रक्त से बनता है।

2- आयुर्वेद वीर्य को सम्पूर्ण शरीरस्थ मानता है, पाश्चात्य लोग इसे अण्डकोषों द्वारा उत्पन्न हुआ मानते हैं।

3-पाश्चात्य आयुर्विज्ञान मं वीर्य के दो रूप, अन्तःस्राव (इन्टरनल सिक्रीशन) तथा वहिःस्राव (एक्सटरनल सिक्रीशन) स्पष्ट रूप से माने गये हैं, आयुर्वेद में यह भेद नहीं दीख पड़ता।

4-पाश्चात्य-विज्ञान में शुक्र-कीट (स्पमैंटोजोआ) की परिभाषा पाई जाती है। शुक्र-कीट, 'उत्पादक-वीर्य' का नाम है। आयुर्वेद में उत्पादक वीर्य को कोई 'कीट-विशेष' नहीं माना गया। शुक्र ही से जीवन की उत्पत्ति होती है।

साधारण बुद्धि द्वारा पूर्वीय तथा पाश्चात्य विचारों में वीर्य के सम्बन्ध में यही चार मोटे-2 भेद दीख पड़ते हैं। हमारी सम्मति में सूक्ष्म-दृष्टि से विचार करने पर इन भेंदों का बहुत सा अंश लुप्त होकर दोनों विचारों में अनेक समानताएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

समानताएं

1-निस्सन्देह आयुर्वेद वीर्य को सात धातुओं से गुजर कर बना हुआ मानता है परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि आयुर्वेद के कई ग्रन्थों में वीर्य के सात धातुओं में से गुजर कर बनने के सिद्धान्त को नहीं माना गया। वे यही मानते हैं कि 'केदार-कुल्यान्याय' से रुधिर ही शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को भिन्न-2 रस देता जाता है। जैसे बगीचे में पानी सब जगह बहता है और उसमें से भिन्न-2 वृक्ष भिन्न-2 रस खींच लेते हैं उसी प्रकार रुधिर भी अंग प्रत्यंग को सींचता हुआ सम्पूर्ण शरीर को पुष्ट करता है। जब रुधिर अण्डकोषों में पहुंचता है तब वे रुधिर में से वीर्य खींच लेते हैं। यह विचार अक्षरशः पाश्चात्य आयुर्विज्ञान के विचार के साथ मिलता है परन्तु निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि यही विचार यथार्थ सत्य है।

-शेष अगले अंक में

भोगवाद

अनुवादकः– पं0 गोकुलचन्द्र दीक्षित

संसार में कार्य करने के लिए जब तक मनुष्य चिन्तारहित नहीं होता, तब तक वह अपना कार्य नहीं कर सकता। चिन्ता उसे अभीष्ट उद्देश्य तक पहुँचने में पग-पग पर रुकावट डालती है। कभी उसे प्यास का ध्यान, कभी क्षुधा का भय, कभी मृत्यु का भय, अतः वह पग-पग पर संकल्प बदलता है। संसार के सम्बन्ध इतने अनन्त हैं कि उन्हें समाप्त करके अप्राप्त इष्ट की ओर चलना असम्भव है। निदान न तो कोई मनुष्य इन वर्त्तमान कार्यों को समाप्त कर सकता है और न ही उसे मुक्ति के लिए साधन करने का अवकाश मिल सकता है। परिणामस्वरूप मनुष्य आगे के लिए निराश ही रहता है, परन्तु ईश्वर हमारे सामने एक और दृश्य प्रस्तुत करता है जिसको देखकर मनुष्य की आशाएँ पुनः हरी-भरी हो जाती हैं। एक मनुष्य कृषि करता है-जब उस बोने वाले मनुष्य को कोई प्रत्यक्षवादी भूमि में अन्न बिखेरते हुए देखता है तो उसे ख्याल आता है कि यह बड़ा ही मूर्ख है जो अपने आहार को पृथिवी पर बिखेर रहा है। परन्तु थोड़े ही काल में कृषि पक जाती है। तब वह मनुष्य जिसने अपने अन्न को प्रत्यक्षवादी होने के कारण पृथिवी पर नहीं डाला था, क्या देखता है कि बोनेवाले ने जितना बीज बोया था उससे शतगुणा अन्न अपने घर में ला-रहा है, और जो अपने अन्न को केवल खाने में ही व्यय कर रहा था उसका अन्न कम हो गया। निदान खाने का नाम भोगना और बोने का नाम कर्म समझना चाहिए। यद्यपि प्रत्यक्ष में खानेवाला अपने अनाज को ठीक ही काम में लाता है और बोनेवाला ठीक काम में नहीं लाता, क्योंकि अन्न क्षुधा के लिए ही बनाया गया है, परन्तु वास्तव में बोनेवाला अपनी आयु के आगे का प्रबन्ध करता है। केवल प्रत्यक्षवादी ही नहीं, अपितु खानेवाला यद्यपि अन्न को ठीक प्रकार से सेवन करता हुआ दृष्टिगोचर होता है, तथापि वास्तव में वह अपनी आगे की दशा को खराब कर रहा है, क्योंकि वर्तमान सामान तो किसी-न-किसी दिवस समाप्त होनेवाला है, क्योंकि इसमें खाने से अल्पता होती है और उन्नति का मार्ग जो बोना है उसे प्रत्यक्ष अर्थात् वर्त्तमान दशा में निष्फल जानकर उसने छोड़ दिया है। वास्तव में संसार में मनुष्यों की बुद्धि दो प्रकार की है-एक प्रत्यक्षवादी जो वर्त्तमान का प्रबन्ध करता और भविष्य पर कुछ विश्वास नहीं रखता है, और दूसरा परोक्षवादी जो वर्त्तमान पर ध्यान नहीं देता है, क्योंकि वह जानता है कि जो कुछ पिछले वर्ष में बोया था वही घर में उपस्थित है अथवा वह पका हुआ खेत में खड़ा है, अतः बोने के ही ध्यान में लगा हुआ है। वह जानता है कि जो मैंने बो लिया है वह पक चुका है और अब वह मेरे श्रम से बदल नहीं सकता। उसको तो भविष्य में जो बोना है उसकी ही चिन्ता है, अतः प्रत्यक्षवादी को सदैव से शास्त्रकार नास्तिक कहते हैं और मूर्ख सर्वदा प्रत्यक्षवादी होते हैं और विद्वान् परोक्षवादी जैसाकि लिखा है–

परोक्षप्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः।

अर्थ– जितने देवता अर्थात् विद्वान् हैं, वे परोक्ष के मित्र और प्रत्यक्ष के शत्रु होते हैं और मूर्ख लोग

इसके सर्वथा विरुद्ध होते हैं। सम्पूर्ण कर्म-फिलॉसफी की नींव परोक्ष के आश्रय है। प्रत्यक्षवादी कर्म कर ही नहीं रुकता, क्योंकि फल-आनेवाला क्षण-परोक्ष है जिस पर उसे विश्वास ही नहीं, अतः प्रत्यक्षवादी नास्तिक होते हैं। कर्म करने की नास्तिक में शक्ति ही नहीं होती, परन्तु भोगवादी आस्तिक होने से कर्मों के फल का नाम भोग समझता है, जैसाकि लिखा है-

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः। -योगदर्शन

अर्थ- पूर्वजन्म के कर्मरूप मूल से तीन फल मिलते हैं। एक जाति अर्थात् जन्म पशु का हो या मनुष्य का, दूसरा आयु अर्थात् कितने श्वास तक इस शरीररूपी जेल में रहना होगा, तीसरा भोग अर्थात् दुःख-सुख। बस, कर्म का पका हुआ फल, ये तीन वस्तुएँ हैं। न तो कोई मनुष्य अपना शरीर बदल सकता है और न ही आयु बदल सकती है और न भोग बदल सकता है, क्योंकि ये तीनों पदार्थ अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त नहीं हो सकते, किन्तु यह फल कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से ही मिलता है। यदि जीवों को इच्छानुसार शरीर मिलता तो कोई जीव भी नीच योनि में नहीं जाता, कोई आदमी कुरूप, लूला-लँगड़ा और कोढ़ी दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि भोग जीव के अधीन होता तो संसार में काई भी दुःखी न होता। जीवों को अल्पायु में मरनेवाला, दुःखी और कुरूप देखकर अनुमान होता है कि जीव ने इन वस्तुओं को अपनी इच्छा से स्वीकार नहीं किया, किन्तु सम्पूर्ण शास्त्रकारों का सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि ये पदार्थ हमको पराधीनता से मिले हैं, अर्थात् हमारा यह शरीर जेलखाना है। जहाँ हम अपनी इच्छा से जाते हैं उसे घर, विद्यालय, पर्यटन-स्थल आदि नाम से पुकारते हैं, परन्तु जहाँ हम जाना नहीं चाहें और जाना पड़े तो उसे (विरुद्ध इच्छावाले मकान को) बन्दीगृह ही कह सकते हैं। शास्त्रकारों ने तो सारे संसार को ही बन्दीगृह बताया है, जिसमें जीव ममता अर्थात् मोहरूपी जंजीर में बँधा हुआ कैद है। महर्षि पतंजलि तो सारे संसार को बनाने का उद्देश्य ही भोग और अपवर्ग अर्थात् मुक्ति बतलाते हैं, जैसाकि उन्होंने लिखा है-

भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

अर्थ- इस संसार में तीन प्रकार की योनियाँ हैं। एक भोग-योनि जैसे गाय, भैंस, कीट-पतंग आदि सब जीव, जो वेदों की शिक्षा से ईश्वर-नियमानुसार अनभिज्ञ रहते हैं। ये सभी पूर्व के कर्मों का फल भोगते हैं, आगे के लिए कुछ नहीं कर सकते। दूसरी कर्म-योनि जो मुक्ति से लौटकर संसार में बिना माता- पिताके जन्म लेते हैं। ये केवल भविष्यत् के लिए ही कर्म करते हैं। उनका पूर्व का भोग कुछ नहीं होता। तीसरी उभय-योनि जो पिछले कर्मों का फल भोगते हैं और भविष्यत् के लिए कर्म करते हैं-ये मनुष्य हैं। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र हैं। कर्म-योनिवाले नितान्त स्वतन्त्र और भोग- योनिवाले नितान्त परतन्त्र हैं। निदान यह संसार पशुओं को अपने पूर्व के कर्मों का फल भोगने के लिए और कर्म-योनियों को पुनः मुक्ति प्राप्त कराने के योग्य कर्म कराने के लिए, एवं मनुष्यों को पूर्व के कर्म भोगने के लिए और आगे के लिए कर्म करवाने के लिए परमात्मा ने संसार बनाया है। जब यह अच्छी तरह ज्ञात हो जावे कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र है, तो भोग की अपेक्षा मनुष्य का शरीर भी एक जेल है। कैदियों को क्या रोटी की चिन्ता करनी योग्य है? कदापि नहीं, क्योंकि जो गवर्नमेण्ट किसी कैदी को जेलखाने में भेजती है वह भोजन जरूर देती है, क्योंकि बिना खुराक दिये उसकी आज्ञा पूरी नहीं हो सकती। जैसे एक मनुष्य की दो वर्ष

की कैद है। यदि गवर्नमेण्ट उसे खुराक नहीं दे तो वह बहुत शीघ्र ही मर जावेगा, जिससे सरकार की वह आज्ञा कि वह दो वर्ष तक जेल में रहे पूरी नहीं हो सकती। निदान अपनी आज्ञा को पूरा करने के लिए गवर्नमेण्ट स्वयं ही खाने को देगी।

आज तक आर्यवर्त्त में इतने अकाल पड़े, किन्तु किसी अकाल में कैदियों को क्षुधा-पीड़ित नहीं देखा। क्या कैदियों का कर्त्तव्य अपनी बीमारी के लिए औषधि करना है? कदापि नहीं, क्यों यह जिम्मेदारी भी गवर्नमेण्ट ने ले रखी है। कैदी का कर्त्तव्य छूटने का उपाय करना है, निदान जो कैदी रोटी तथा औषधि के ध्यान में लगा रहता है, वह अपना समय व्यर्थ खोता है। प्रायः मनुष्य प्रश्न करते हैं कि कैदी को छूटने की चिन्ता क्यों करनी चाहिए? क्योंकि नियत समय पर तो गवर्नमेण्ट स्वयं ही छोड़ देगी, परन्तु यह विचार ठीक नहीं, क्योंकि गवर्नमेण्ट इस समय तो निर्धारित अवधि पर छोड़ देगी, परन्तु उसका स्वभाव ऐसा हो चुका है जिससे वह पुनः कारागार में आये। छूटने से अभिप्राय है, ऐसा स्वभाव बनाना जिससे दुबारा जेल में न आना पड़े, अतः महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में बतलाया है–

हेयं दुखमनागतम्। –2। 16

अर्थ– भविष्यत् दुःख त्यागने योग्य है। जब तक मनुष्यों के हृदय में यह ठीक निश्चय न हो जाए कि मैं कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र हूँ, तब तक मनुष्य मुक्ति पद को प्राप्त करने योग्य नहीं होता, क्योंकि भोग उलटा करने की इच्छा में जितना समय व्यय किया जाता है वह सब व्यर्थ जाता है। जैसे जो गृह बहुत कठिन धातु का बना हुआ है, यदि कोई उस मकान में द्वार के मार्ग से जाना चाहे तो सुगम है, परन्तु यदि दीवार से निकलना चाहे तो समय को व्यर्थ खो देना है। इस कर्त्तव्य और भोग के लिए परमात्मा ने कृषि का दृष्टान्त दिया है। बोना कर्म है और काटना भोग है। बोने में मनुष्य स्वतन्त्र है, चाहे जौ बोये या गेहूँ अथवा चना, चाहे पचास बीघे बोये या 10 बीघे, परन्तु इसे काटने के समय मनुष्य विवश होता है, उस समय जो कुछ बोया है, वही काट सकता है। यदि कोई पके हुए जौ के खेत को गेहूँ बनाने के लिए यत्न करे तो सौ वर्ष पर्यन्त के श्रम से भी वह जौ का खेत गेहूँ नहीं बन सकता, परन्तु गेहूँ का द्वितीय खेत बोकर हम दूसरे वर्ष में गेहूँ उत्पन्न कर सकते हैं। निदान भोग कर्म का पका हुआ फल है, उसके बदलने की शक्ति किसी में नहीं, उसके बदलने के लिए परिश्रम करना आयु को व्यर्थ खोना है। संसार में चाहे कैसा ही विद्वान् राजा अथवा बली रहे, परन्तु भोग के बदलने में सब परतन्त्र हैं। क्या आपने नहीं देखा कि हमारा चक्रवर्ती एडवर्ड सबसे बड़ा राजा है जिसके राज्य में 11400000 वर्ग मील पृथिवी है, जिसकी प्रजा चालीस करोड़ मनुष्यों से अधिक है, जो लन्दन जैसे बड़े नगर में रहता है, जहाँ बड़े-बड़े डॉक्टर और पदार्थ विद्या के विद्वान् रहते हैं, परन्तु उस नगर में रहते हुए भी इतने अधिक बलवान् राजा का लड़का युवावस्था में मृत्यु को प्राप्त हो गया। क्या कोई पदार्थ-विद्या का ज्ञाता (साइंटिस्ट) या कोई सेना उसकी रक्षा कर सकी? जब इतना महान् राजा इतना साधन-सम्पन्न होते हुए भी अपने पुत्र की रक्षा न कर सका तो क्या वह मनुष्य मूर्ख नहीं जो थोड़ी-सी पूँजी के विश्वास पर अथवा स्थिर फण्ड (निधि) के भरोसे पर यह आशा रखते हैं कि वे भोग बदल लेंगे? यह बात भी किसी से छिपी हुई नहीं कि एडवर्ड सप्तम के गद्दी पर बैठने का दिवस 26 जून नियत हुआ था। लन्दन की पार्लियामेण्ट के उत्तम प्रबन्ध से रुपये-पैसे की कोई कमी न थी, परन्तु भोग ऐसा बलवान् दृष्टिगोचर हुआ कि महाराज एडवर्ड को 26 जून के स्थान में 19 अगस्त को तख्त पर बैठना पड़ा और उत्सव भी 26 जून की जगह

19 अगस्त को हुआ, परन्तु क्या महाराजा की गद्दी का दिवस रुपये की कमी के कारण विकल्प को प्राप्त हुआ? कदापि नहीं। क्या पार्लियामेण्ट का प्रबन्ध ठीक नहीं था? कदापि नहीं। क्या किसी शत्रु ने कोई झगड़ा डाला जो उत्सव को पीछे हटाया? नहीं। तो स्पष्ट उत्तर यही है कि भोग ने रोक दिया। महात्मा रामचन्द्र की दशा तो सबको ज्ञात है कि प्रातःकाल गद्दी पर सुशोभित होंगे–यह आज्ञा हो चुकी थी। सारे नगर में उत्सव मनाये जा रहे हैं, परन्तु वह कौन–सी शक्ति है कि जिसने राजा, मंत्री, सभासद् और प्रजा की इच्छा के विरुद्ध रामचन्द्रजी को गद्दी पर बैठने के स्थान में वनवास दिलाया? जिधर विचारो, स्पष्ट शब्दों में भोग की प्रबल शक्ति सिद्ध होती है। संसार में कोई शक्ति नहीं जो भोग को बदल सके, क्योंकि भोग उस प्रबल शक्ति की आज्ञा का नाम है कि जिसकी आज्ञा को रूस के महाराज जार जैसे, जिसकी चालीस लाख सेना हो, डाइनामाइट के गोले और तोपखाना एवं बन्दूक तैयार करने के प्रबन्ध जिसके यहाँ हों, वह एक क्षणभर भी नहीं रोक सके, यद्यपि भोग हमारे ही पुरुषार्थ से बनता है, अतः भोग से पुरुषार्थ बड़ा है, परन्तु जब भोग उत्पन्न हो चुका तो पुनः पुरुषार्थ से बदला नहीं जा सकता। जिस प्रकार जौ हमारे ही पुरुषार्थ से बोये गये थे, परन्तु जब पक चुके तो अब उन्हें हमारा परिश्रम किस भाँति बदल सकता है? कदापि नहीं बदल सकता। एक–दो–चार दृष्टान्त ही नहीं, किन्तु पग–पग पर इतिहास भोग की प्रबल शक्ति को सिद्ध कर रहा है।

प्रश्न– स्वामी दयानन्द और तमाम ऋषियों ने तो पुरुषार्थ को बड़ा बतलाया है, तुम भोग को प्रबल बतलाते हो?

उत्तर– स्वामीजी ने लिखा है कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं और फल भोगने में परतन्त्र हैं। निदान जहाँ स्वतन्त्र हो उसी में कर्म करना आवश्यक है, क्योंकि 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' स्वतन्त्र ही करता होता है; और जहाँ परतन्त्र है उसमें काम करने से कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि यदि काम करने से कृतकार्यता हो जाए तो परतन्त्रता न रही, और जिसमें कृतकार्यता की आशा नहीं उसमें प्रयत्न करना मूर्खता है, क्योंकि भोग पुरुषार्थ से बनता है, अतः भोग की अपेक्षा पुरुषार्थ को गुरुत्व दिया है, परन्तु पुरुषार्थ जीव के अधीन हैं, चाहे सीधा करे चाहे उलटा करे।

और भोग जीव के अधीन नहीं, क्योंकि संसार में कोई भी ऐसा नहीं जो दुःख भोगना चाहता हो; परन्तु न चाहते हुए भी बड़े–बड़े बादशाह, राजा–महाराजा, सेठ–साहूकार, बड़े–बड़े बहादुर योद्धा सभी दुःख भोगते हैं। कोई भी अपने पुरुषार्थ से भोग को बदल नहीं सकता। द्वितीय, कोई मनुष्य नहीं जो सुख प्राप्त करने का श्रम ना करता हो, परन्तु सबको यत्न करते हुए भी सुख प्राप्त नहीं होता, प्रायः दुःख ही प्राप्त होता है।

प्रश्न– क्या मनुष्यों को भोग पर विश्वास कर पुरुषार्थ को नितान्त छोड़ देना चाहिए?

उत्तर– मनुष्यों को एक क्षण के लिए भी पुरुषार्थ से रहित नहीं रहना चाहिए, किन्तु पुरुषार्थ अनागत उन्नति के लिए करना चाहिए। वर्त्तमान भोग को बदलने के लिए पुरुषार्थ करना मूर्खता है। कारण यह कि भोग में परतन्त्र होने से कृतकार्यता नहीं होती, केवल दुःख और आपत्ति ही प्राप्त होती है। जो अनागत के लिए पुरुषार्थ करता है वह यदि ज्ञान के विरुद्ध न हो तो अकृतकार्यता नहीं हो सकती और उसे किसी दशा में निराश भी नहीं होना पड़ता।

प्रश्न– यदि सभी भोगवादी हो जाएँ, कोई दुकानदारी भी न करे तो इसका फल यह होगा कि संसार के सम्पूर्ण प्रबन्धों में गड़बड़ हो जावे और लोग आलसी होकर भूखों मरने लगें।

उत्तर– यह विचार ठीक नहीं कि भोगवादी आलसी होता है। कारण यह कि इस बात को प्रत्येक मनुष्य जानता है कि खानेवालों से बोनेवाला अधिक पुरुषार्थी होता है। द्वितीय बात यह है कि सब भोगवादी हो जावें तो संसार के सम्पूर्ण प्रबन्धों में गड़बड़ हो जावे, यह और भी मिथ्या है। कारण यह कि भोगवाद किसी कार्य को नहीं रोकता, किन्तु नीयत बदलता है। अब तक जो कार्य स्वार्थी अपने भोग बदलने के लिए करता है, फिर वे ही कार्य दूसरों को लाभ पहुँचाने की इच्छा से किये जाएँगे।

प्रश्न– वर्त्तमान के लिए तो कार्य को प्रत्येक ही कर सकता है, अतः पुरुषार्थ प्रत्येक ही कर सकता है, परन्तु अनागत के लिए सबको निश्चय नहीं हो सकता, अतः प्रत्येक मनुष्य पुरुषार्थ नहीं कर सकता।

उत्तर– विद्वान् और सुशिक्षित मनुष्य तो अनागत के लिए ही पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु मूर्ख मनुष्य वर्त्तमान के लिए। जैसे यह सबका माना हुआ सिद्धान्त है कि देवता बोते हैं, खाते नहीं, मनुष्य बोते हैं और खाते हैं, तथा पशु केवल खाते हैं, बोते नहीं। देवता का अर्थ है विद्वान् जो पूर्णतया वेदों का ज्ञाता हो और जो भविष्यत् के लिए ही प्रबन्ध करता हो, जैसाकि स्वामी शंकराचार्य से प्रश्न किया गया कि जब तुम संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहते हो, जिसके सभी विरुद्ध हैं। तब क्या आपने अपनी रोटी का भी प्रबन्ध किया? इसका उत्तर स्वामी शंकराचार्य ने यह दिया–

प्रारब्धाय समर्पितं निजवपुः।

अर्थात् मैंने यह शरीर तो भोग के ऊपर छोड़ दिया है। अब मैं केवल अपना कार्य करूँगा।

स्वामी शंकराचार्य के मानसिक संकल्प ऐसे उत्तम थे कि वह केवल वैदिक धर्म को फैलाते थे और अपने लिए कुछ भी नहीं करना चाहते थे। वास्तव में भोगवाद कृतकार्यता की चाबी है, जो इसको समझ लेता है वह दुःखों से मुक्त हो जाता है। जब वह जान लेता है कि भोग ही ऐसा है तब वह मित्रता–शत्रुता से भी मुक्त हो जाता है। वह समझ लेता है कि भोग के अतिरिक्त जो मेरे कर्मों का फल है, दूसरा मनुष्य मुझे दुःख–सुख दे ही नहीं सकता। जब कोई दुःख का देनेवाला ही नहीं तो शत्रु किसको समझे और मित्र किसको? सत्पुरुष जितने भोगवादी होंगे उतना ही उस धर्म को कृतकार्यता प्राप्त होती है। उन धार्मियों के मन में ईश्वर के प्रति विश्वास और शान्ति होगी।

जिन मनुष्यों को भोग पर विश्वास नहीं है, वे मुक्ति को किसी दशा में भी प्राप्त नहीं कर सकते। कारण यह कि सांसारिक आवश्यकताओं से उनको अवकाश ही नहीं मिल सकता कि वे मुक्ति के लिए पुरुषार्थ करें। भोग ऐसा अटल है कि उसके विरुद्ध किसी को कृतकार्यता प्राप्त नहीं हो सकती, अतः जो पुरुषार्थ भोग को बदलने के लिए किया जाता है वह व्यर्थ जाता है। उसमें अकृतकार्यता होने के कारण दूसरी ओर काम कर ही नहीं सकता।

यूरोप में जितनी अशान्ति है उसका कारण भी नास्तिकता अर्थात् भोगवाद का अभाव ही है। यूरोप–निवासियों का अनुकरण (नकल) करनेवाले एंग्लोवैदिक मनुष्यों में जो अशान्ति है उसका कारण भी भोगवाद से अरुचि है, परन्तु भोगवाद को मूर्ख पुरुष नहीं समझ सकता। इसको समझने के लिए ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या, कर्मफलविद्या (कर्म–फिलॉसफी) पर दत्तचित्त होकर विचारने की आवश्यकता है। जो मनुष्य इन विद्याओं से रहित है उनके लिए यह सिद्धान्त हँसी करने के अतिरिक्त अधिक लाभदायक नहीं हो सकता, परन्तु विद्वान् के विचार में यही भोगवाद शान्ति का कारण और कृतकार्यता की कुंजी और ईश्वर–विश्वास का लक्षण है। ❀❀❀

हे करुणा-सागर के स्वामी, तू तारक-पद पाता है।
अपने प्रिय भक्तों का बेड़ा, पल में पार लगाता है॥
तेरी पारहीन प्रभुता से, जिसका जी भर जाता है।
वह योगी संसार-सिन्धु को, मोह त्याग तर जाता है॥ 8॥

हे सर्वज्ञ, सुबोध-बिहारी, तू अनुपम-विज्ञानी है।
तेरी महिमा गुरु लोगों ने, वचनातीत बखानी है॥
जिसने तू जाना जीवन को, संयम-रस में साना है।
उस संन्यासी ने अपने को, सिद्ध-मनोरथ माना है॥ 9॥

हे सुविश्वकर्मा, शिव, स्रष्टा, तू कब ठाली रहता है।
निर्विराम तेरी रचना का, स्रोत सदा से बहता है॥
जो आलस्य बिसार विवेकी, तेरे घाट उतरता है।
उस उद्योगशील के द्वारा, सारा देश सुधरता है॥ 10॥

हे निर्दोष-प्रजेश प्रजा को, तू उपजाय बढ़ाता है।
तेरे नैतिक-दण्ड-न्याय से, जीव कर्म-फल पाता है॥
पक्षपात को छोड़ पिता जो, राज-धर्म को धरता है।
वह सम्राट्-सुधी देशों का, सच्चा शासन करता है॥ 11॥

हे जगदीश लोक-लीला के, तू सब दृश्य दिखाता है।
जिनके द्वारा हम लोगों को, शिल्प अनेक सिखाता है॥
जिसको नैसर्गिक-शिक्षा का, पूरा अनुभव होता है।
वह अपने आविष्कारों से, बीज सुयश के बोता है॥ 12॥

हे प्रभु यज्ञ-देव-आनन्दी, तू मंगलमय होता है।
तप्त-भानु-किरणों से तेरा, होम निरन्तर होता है॥
जो जन तेरी भाँति अग्नि में, हित से आहुति देता है।
वह सारे भौतिक देवों से, दिव्य सुधा-रस लेता है॥ 13॥

हे कालानल, काल, अर्यमा, तू यम, रुद्र, कहाता है।
धर्म-हीन दुष्टों के दल में, दुःख-प्रवाह बहाता है॥
जो तेरी वैदिक-पद्धति से, टेढ़ा तिरछा चलता है।
वह पापी, उद्दण्ड-प्रमादी, घोर ताप से जलता है॥ 14॥

हे कविराज वेदमन्त्रों के, तू कविकुल का नेता है।
गद्य, पद्य, रचना की मेधा, दिव्य दया कर देता है॥
सर्वकाल तेरे गुण गाता, जो कवि-मण्डल जीता है।
शंकर भी है अंश उसी का, ब्रह्मकाव्य रस पीता है॥ 15॥

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (प्रेस में)	150.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शंकर सर्वस्व	120.00	महिला गीतांजलि	10.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	क्या भूत होते हैं	10.00
नारी सर्वस्व	60.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
विदुर नीति	40.00	सच्चे गुच्छे	8.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
चाणक्य नीति	40.00	बाल मनुस्मृति	15.00
वेद प्रभा	30.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
शान्ति कथा	30.00	ओंकार उपासना	15.00
नित्य कर्म विधि	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग (प्रेस में)	25.00	गायत्री गौरव	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो मित्रों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
मील का पत्थर	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
भ्रांति दर्शन	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	5.00
इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	15.00	आदर्श पत्नी	5.00

आ[illegible]क [illegible]चना

1. पाठकगण वर्ष 2015 के [illegible] वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष [illegible]यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भे[illegible] प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600